वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

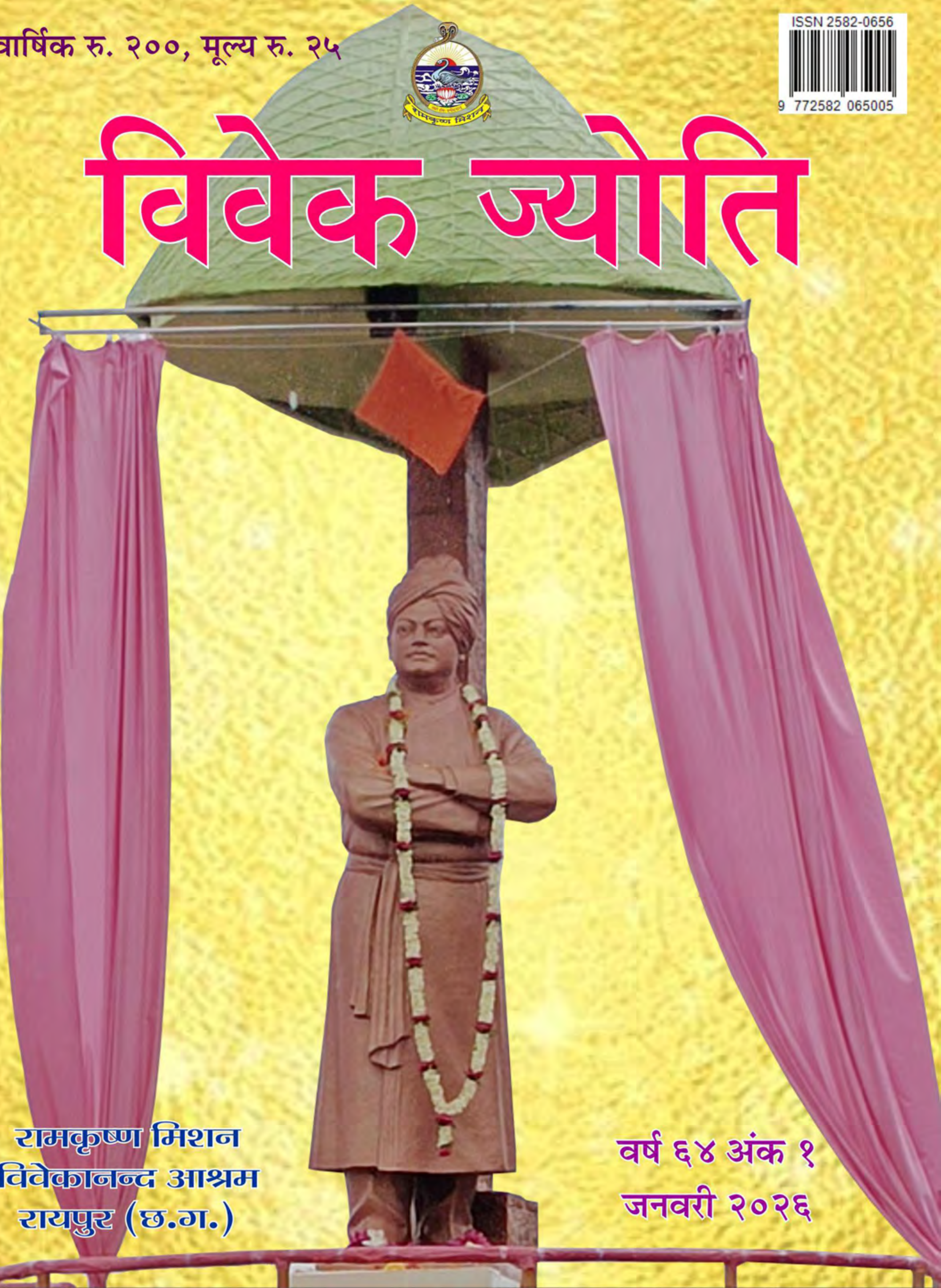

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक १
जनवरी २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक १

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

पौष, सम्वत् २०८२

जनवरी, २०२६

अनुक्रमणिका

* तुम्हारे अन्दर जो परमात्मा है, वही परमात्मा सबमें है : विवेकानन्द ६
* विवेकानन्द के विचारों की शाश्वत प्रासंगिकता (नृपेन्द्र अभिषेक) ९
* सुभाषचन्द्र बोस में क्रान्ति की चिनगारी : स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा (ब्रह्मचारी वेदगम्यचैतन्य) ११
* स्वामी विवेकानन्द की संगीत-कलापरक दृष्टि (गौरीशंकर वैश्य) १३
* शक्तिस्वरूपिणी माँ सरस्वती (उत्कर्ष चौबे) १५
* (बच्चों का आंगन) पेड़ पर भूत (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) २०
* शास्त्रानुसार श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन (स्वामी दयापूर्णानन्द) २१
* (युवा प्रांगण) स्वामी विवेकानन्द : युवा युगद्रष्टा (स्वामी गुणदानन्द) २६
* धवल नर्मदा (डॉ. राघवेन्द्र गुमास्ता) २८
* तो क्या सत्य का त्याग कर दें? (स्वामी सत्यरूपानन्द) २९
* निडर और धैर्यशाली स्वामी सारदानन्द (श्रीमती मिताली सिंह) ३१
* विवेकानन्द के सपने हो रहे साकार (शिव प्रकाश) ३७
* स्वामी विवेकानन्द (पंकज राय) ४१
* (भजन एवं कविता) वीर विवेकानन्द जगद्गुरु (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), विवेकानन्द की विश्वविजय (डॉ. अनिल कुमार) * जयति शारदे! (श्रीधर प्रसाद द्विवेदी), * माँ तार-तार झंकृत कर दो (रामबरन सिंह 'करुण') ३०
* स्वामी विवेकानन्द वन्दना (रामकुमार गौड़) ३२

श्रृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५
सम्पादकीय ७
पुरखों की थाती १६
रामगीता १७
श्रीरामकृष्ण-गीता ३३
गीतातत्त्व-चिन्तन ३४
साधुओं के पावन प्रसंग ३९
समाचार और सूचनाएँ ४५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	**२५०/-**	**१२५०/-**
विदेशों में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में स्पीड पोस्ट का शुल्क
प्रति अंक ५५/- अतिरिक्त देय होगा

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति रामकृष्ण मिशन, चेरापूँजी की है। जिसका उद्घाटन संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया है।

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती- २०२६ के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी छात्र-छात्राओं के लिये १४ जनवरी, २०२६ से २२ जनवरी, २०२६ तक विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जायेगा।

१२ जनवरी, २०२६ को राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया जायेगा।

२५ जनवरी, २०२६ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा।

२६ जनवरी २०२६ से १ फरवरी २०२६ तक वृन्दावन धाम के प्रसिद्ध भागवत प्रवचनकार पं. अखिलेश शास्त्री जी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

जनवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	स्वामी तुरीयानन्द
१०	स्वामी विवेकानन्द
२०	स्वामी ब्रह्मानन्द
२२	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
१४,२९	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री देवीशरण गुप्ता, जोधपुर (राजस्थान)	२,०००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७३१.	श्री निर्मल कुमार पुरोहित, बीकानेर (राज.)	राजकीय सार्वजनिक मंडल पुस्तकालय, बीकानेर (राज.)
७३२.	,, ,, ,,	राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर
७३३.	,, ,,	बिनानी कन्या महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
७३४.	,, ,,	राजकीय महारानी सुदर्शन कन्या महाविद्यालय, बीकानेर
७३५.	,, ,,	राजकीय डुंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १५००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में ०५ वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ जनवरी २०२६ अंक १

स्वामी विवेकानन्द-स्तुतिः

प्राची तु विस्मृतनिजात्ममयस्वरूपा
रूपादिबाह्यविषयैकपरा प्रतीची ।
इत्थं विलोक्य तमसावृतशुद्धभावान्
भावप्रभावमलिनां कलिना धरित्रीम् ।।१।।
वेदान्ततत्त्वमुपदिश्य नवप्रकाशं
विश्वं तमः प्रसरसंगतमूद्दिधीर्षुः ।
यः सप्रभं सुकृतवान् कृतवांश्चिदात्म-
स्नेहान्वितो विजयतां स विवेकदीपः ।।२।।

– हमारा प्राच्य देश आत्मस्वरूप को भूल गया था और पाश्चात्य देश के बाह्य रूप के मोह में तन्मय हो गया था। इस प्रकार सब विशुद्ध भावों को अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न एवं धरित्री को पाप के भार से मलिन देखकर, नररूप में प्रकाशमान वेदान्त के आत्मतत्त्व का उपदेश देकर अन्धकाराच्छन्न विश्व का उद्धार करने की इच्छा से जो पुण्यवान यति उसी चैतन्यमय आत्मभाव रूपी तैल में परिपूर्ण विवेक प्रदीप के समान प्रतिभात हुये थे। उन्हीं तेजस्वी विवेकानन्द की जय हो।

संस्थाप्य निर्मलमतिं नवभिक्षुसंघं
निःस्वार्थभावमिहधर्मसमन्वयार्थम् ।
सेवानरस्य परमा परमेश्वरस्य
सेवेति सिद्धमकरोन्निजकर्मयोगैः ।।३।।

– धर्म-संस्थापन के लिये निःस्वार्थ भावापन्न, निर्मल बुद्धिमान संन्यासियों के द्वारा नवीन संघ स्थापित करके, जिन्होंने सभी को निर्मल बुद्धि और निःस्वार्थ भाव-ग्रहण करने के लिये उपदेश दिया था तथा निष्काम भाव से कर्मयोग के माध्यम से मनुष्य की सेवा ही परमेश्वर की प्रकृष्ट सेवा है, यह घोषणा जिन्होंने की थी, उन्हीं विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

तुम्हारे अन्दर जो परमात्मा है, वही परमात्मा सबमें है : विवेकानन्द

प्रत्येक मानवीय व्यक्तित्व की तुलना काँच की चिमनी से की जा सकती है। प्रत्येक के अन्दर में वही शुभ्र ज्योति है – दिव्य परमात्मा की आभा पर काँच के रंगों और उसकी मोटाई के अनुरूप उससे विकीर्ण होने वाली ज्योति की किरणें विभिन्न रूप ले लेती हैं। (१/२५७)

तुम्हारे अन्दर जो परमात्मा है, वही परमात्मा सबमें है। यदि तुमने यह न जाना, तो कुछ न जाना। भेद हो कैसे सकता है? यह सब तो एक है। प्रत्येक प्राणी सर्वोच्च प्रभु का मन्दिर है। यदि तुम उसे देख सके, तो ठीक है और यदि नहीं देख सके, तो तुममें आध्यात्मिकता अभी तक नहीं आयी। (१०६)

अपनी पूजा के समय परमात्मा के पितृ-भाव को स्वीकार कर लेने से ही क्या लाभ, जब हम अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई न मान सकें? (१/२७५)

विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु; प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु। (३/३३२)

मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी मनुष्य या राष्ट्र अपने को दूसरों से अलग रखकर जी नहीं सकता और जब कभी भी गौरव, नीति या पवित्रता की भ्रान्ति-धारणा से ऐसा प्रयत्न किया गया है, उसका परिणाम उस पृथक् होने वाले पक्ष के लिये सदैव घातक सिद्ध हुआ। (३/३३)

जो सर्वव्यापी, अप्रमेय, निर्गुण, निर्विकार और जगत् का महाकवि है, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र जिसके छन्द हैं, वह प्रत्येक को उसका उचित भाग (फल) देता है। (९/१३१)

इस बहुत्वपूर्ण जगत् में जो उस एक को, इस परिवर्तनशील जगत् में जो उस अपरिवर्तनशील को अपनी आत्मा की आत्मा के रूप में देखता है, अपना स्वरूप समझता है, वही मुक्त है, वही आनन्दमय है, उसी ने लक्ष्य की प्राप्ति की है। (२/१३१)

जो इस बहुत्वपूर्ण जगत् में उस एक अखण्डस्वरूप को देखते हैं, जो इस मर्त्य जगत् में उस एक अनन्त जीवन को देखते हैं, जो इस जड़ता और अज्ञान से पूर्ण जगत् में उस एक प्रकाश और ज्ञानस्वरूप को देखते हैं, उन्हीं को चिर शान्ति मिलती है, अन्य किसी को नहीं, अन्य किसी को नहीं। (२/७२)

जो एक है, सब का नियन्ता और सब प्राणियों की अन्तरात्मा है, जो अपने एक रूप को अनेक प्रकार का कर लेता है, उसका दर्शन जो ज्ञानी पुरुष अपने में करते हैं, वे ही नित्य सुखी हैं, अन्य नहीं।

मात्र एक ही सत्ता है तथा वह एक सत्ता ही विभिन्न मध्यवर्ती वस्तुओं के मध्य से होकर दिखायी पड़ने पर, वही पृथिवी अथवा स्वर्ग अथवा नरक अथवा ईश्वर अथवा भूत-प्रेत अथवा मानव अथवा दैत्य अथवा जगत् अथवा वह सब कुछ प्रतीत होती है। किन्तु इन सब विभिन्न वस्तुओं में – 'जो इस मृत्यु के सागर में उस एक का दर्शन करता है, जो इस संतरणशील विश्व में उस एक जीवन का दर्शन करता है, जो उस अपरिवर्तनशील का साक्षात्कार करता है, उसी को चिरन्तन शान्ति की उपलब्धि होगी, किसी अन्य को नहीं, किसी अन्य को नहीं।'' (६/२९५)

जब तक सारे संसार को साथ-साथ उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ाया जायेगा, तब तक संसार के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं है। और दिन प्रति दिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की मीमांसा मात्र जातीय, राष्ट्रीय या किन्हीं संकीर्ण भूमियों पर नहीं टिक सकती। (५/१६३)

विश्व में कहीं भी कोई अशुभ हो, उसके लिए प्रत्येक उत्तरदायी है। जो क्रियाएँ विश्व से एकत्व स्थापित करें, वे पुण्य हैं और जो विभेद स्थापित करें, वे पाप हैं। तुम उस अनन्त के ही एक अंश हो। यही तुम्हारा स्वभाव है। अतः तुम अपने भाई के रक्षक हो।

जब तक हर प्राणी (चींटी या कुत्ता भी) मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक कोई भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक सभी सुखी नहीं हो जाते, कोई भी सुखी नहीं हो सकता। जब तुम किसी को क्षति पहुँचाते हो, तो अपने आपको ही क्षति पहुँचाते हो, क्योंकि तुम और तुम्हारा भाई एक ही हैं। (२/२५४)

सम्पादकीय

कर्तव्यनिष्ठ बनने की क्रान्ति

जब भारत परतन्त्र था, तब स्वतन्त्रता-संग्राम हुआ, स्वतन्त्र होने की क्रान्ति हुई और सम्पूर्ण भारतवासियों को इस क्रान्ति ने प्रभावित किया। इस क्रान्ति से प्रभावित होकर देशवासियों ने स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया और देश को स्वतन्त्र कराया। स्वतन्त्र भारत में प्राय: देश के किसी-न-किसी भाग में अधिकारों की प्राप्ति हेतु आन्दोलन होते रहते हैं। संसद से लेकर सड़क तक, घर से लेकर कार्यालय तक, परिवार से लेकर समाज तक, नागरिक से लेकर उच्च पदस्थ अधिकारी तक अपने-अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं और इसके लिये देश के विभिन्न स्थानों पर अपने-अपने स्तर से आन्दोलन होते रहते हैं। इन आन्दोलनों को देखते हुये सरकार ने कई स्थानों को निश्चित कर दिया है कि आप यहाँ पर आन्दोलन कीजिये, धरना दीजिये आदि। अपने अधिकारों के प्रति जन-जन का ध्यान आकर्षण करने के लिये रैलियाँ निकाली जाती हैं और सभाएँ भी की जाती हैं। कहीं-कहीं ये सभाएँ और रैलियाँ उग्र हो जाती हैं और देश की सम्पत्ति को क्षति भी पहुँचाती हैं। सरकारी संस्थानों की क्षति होती है। यहाँ तक कि मार-पीट भी करते हैं, कितने लोगों की मृत्यु हो जाती है, जिससे लोगों को जेल में भी जाना पड़ता है। अपने अधिकारों के लिये, अपने प्रति न्याय के लिये नरम-गरम, उग्र और शान्त; दोनों आन्दोलन होते रहते हैं।

लेकिन परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति हमारा यह कर्तव्य है और हमें इसे पूरी निष्ठा और सच्चाई से करना चाहिये, इसके लिये कोई आन्दोलन होते मुझे नहीं दिखता। इतना ही नहीं; किसी के द्वारा प्रबुद्ध नागरिकता हेतु आयोजित सभाओं में ऐसी भीड़ नहीं दिखती, वैसा दृढ़ निश्चय और संकल्प नहीं दिखता। मैं कभी यह नहीं सुनता कि अमुक दिनांक को इतने बजे से राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, हमारा यह विशेष कर्तव्य है और इसके लिये रैली निकाली जायेगी, सभा होगी, शान्तिपूर्वक आन्दोलन होगा, जन-सम्पर्क किया जायेगा, आप लोग सादर आमन्त्रित हैं। लेकिन अब समय आ गया है कि ऐसे कर्तव्य-निष्ठता के आन्दोलन किये जाएँ। इस आन्दोलन की, इस क्रान्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।

कर्तव्य-पालन हेतु आन्दोलन

न्याय और अधिकारों के लिये बहुत से आन्दोलन हुये। अब कर्तव्य-पालन हेतु आन्दोलन होने चाहिये। घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर, सम्पूर्ण राष्ट्र में आन्दोलन हो। वह आन्दोलन केवल सैद्धान्तिक नहीं होगा। वह सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों होगा। इस आन्दोलन में आबालवृद्ध, नर-नारी सभी सम्मिलित होंगे। अपने कर्तव्य कर्म को पूर्ण करते हुये अन्य सबके कर्तव्य-कर्मों को करने की प्रेरणा देनी होगी। छात्र-शिक्षक, कर्मचारी-अधिकारी; सभी समय से अपने कार्यालय में जाकर अपना कार्य करेंगे। प्रबुद्ध नागरिक अपने वरिष्ठ जन होने के कारण अपने जीवन के प्रेरक अनुभवों को अन्य को बतायेंगे और उन्हें कर्तव्यनिष्ठ बनने का स्मरण दिलायेंगे। यद्यपि यह कठिन और अव्यावहारिक प्रतीत होता है, किन्तु यह सम्भव है और हो सकता है और इसका तात्कालिक और दूरगामी सार्थक परिणाम अवश्य होगा।

स्वामीजी कहते हैं, ''हमारा पहला कर्तव्य यह है कि अपने प्रति घृणा न करें। क्योंकि आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी विश्वास नहीं हो सकता।''[१]

स्वामी विवेकानन्द के कर्तव्यनिष्ठा पर विचार

स्वामी विवेकानन्द सर्वदा कर्तव्यपरायण होने की बात कहते थे। स्वामीजी कर्तव्यनिष्ठता को शक्ति का स्रोत मानते हैं। वे कहते हैं – ''जो कर्तव्य हमारे निकटतम है, जो कार्य अभी हमारे हाथों में है, उसको सुचारु रूप से सम्पन्न करने से हमारी कार्य-शक्ति बढ़ती है और इस प्रकार क्रमश: अपनी शक्ति बढ़ाते हुये हम एक ऐसी अवस्था की भी प्राप्ति कर सकते हैं, जब हमें जीवन और समाज के सबसे ईप्सित एवं

प्रतिष्ठित कार्यों को करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।''[२] अत: यदि हम जीवन में शक्तिशाली होना चाहते हैं। यदि राष्ट्रसेवा हेतु शक्तिसम्पन्न होना चाहते हैं, तो हमें कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिये, चाहे वह कार्य छोटा हो या बड़ा।

कार्य कोई छोटा-बड़ा नहीं होता, कार्य के पीछे निहित भावना छोटी-बड़ी होती है। स्वामीजी कहते हैं, ''अत्यन्त छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाये, तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से कर्म कर सके, करे।''[३] स्वामीजी अपनी कर्मयोग पुस्तक में कहते हैं – ''यदि कोई मनुष्य छोटा कार्य करे, तो उससे वह छोटा नहीं कहा जा सकता। कर्तव्य के केवल बाहरी रूप से ही मनुष्य की उच्चता या नीचता का निर्णय करना उचित नहीं है। देखना तो यह चाहिये कि वह अपना कर्तव्य किस भाव और किस ढंग से करता है।''[४] यदि हम केवल अपने स्वार्थ के लिये कोई काम करते हैं, तो वह कार्य छोटा हो जाता है। यदि हम उसी कार्य को नि:स्वार्थ भाव से राष्ट्र के कल्याण के लिये करते हैं, तो वह बड़ा हो जाता है। यदि हम एक किलो रेवड़ी अकेले खाते हैं, तो वह स्वार्थ है। यदि हम उसे अपने परिवार में बाँटकर खाते हैं, तो कुछ ठीक है। लेकिन यदि हम उसे अपने पड़ोसियों में, पूरे गाँव में बाँटकर खाते हैं, तो वह कार्य परमार्थ और बड़ा हो जाता है। यह प्रवृत्ति हमें उदारता, नि:स्वार्थता और उत्कृष्टता की ओर ले जाती है।

स्वामीजी कहते हैं, ''जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना, सबसे श्रेष्ठ मार्ग है।''[५] इसलिये उदार विचारों के साथ सम्मुख कर्तव्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करें। यह श्रेष्ठ पथ, श्रेष्ठ कर्म है। हमारे सम्मुख जो भी छोटा-बड़ा कर्तव्य कर्म है, सर्वप्रथम उसे पूर्ण करें। अपने अल्पांश कार्य को छोड़कर भी केवल उच्चतम अधिकारों के लिये संघर्ष और आन्दोलन में ही समय व्यतीत न करें। इससे आपके सफलता का मार्ग अवरुद्ध होता है।

कर्तव्य पवित्र और भगवत्पूजा है

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''पहले तो हमें जन्म से प्राप्त कर्तव्य को करना चाहिये और उसे करने के बाद समाज और जीवन में हमारी स्थिति के अनुसार जो कर्तव्य हो, उसे सम्पन्न करना चाहिये।''[६] इतना ही नहीं, स्वामीजी अन्यत्र कहते हैं, ''प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है और कर्तव्यनिष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है।''[७]

स्वामी विवेकानन्द ने 'कर्मयोग' नामक अपने व्याख्यान में कर्म की पवित्रता और कर्तव्यनिष्ठा से उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति का बड़ा ही विलक्षण दृष्टान्त दिया है, जो हमारे शास्त्रों में वर्णित है। व्याध मांस बेचने का काम करता था, लेकिन उसकी पवित्रता और जन्मजात प्राप्त कर्म के प्रति निष्ठा ने उसे एक सन्त के रूप में परिणत कर दिया। उस प्रसंग को व्याध-गीता कहा जाता है। व्याध अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करता है। उसके बाद आगत अतिथियों से सत्संग और भगवत्चर्चा करता है। उसकी कर्मनिष्ठा से उसके कर्म भगवत्पूजा में, साधना में परिणत हो गये। माता-पिता की सेवा उसकी उपासना बन गयी, जिससे उसने आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त किया। उसके पास बड़े तपस्वी साधक उससे सत्संग करने और उससे आध्यात्मिक मार्गदर्शन लेने के लिये जाते थे। इसलिये जीवन में कर्तव्यनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। कर्तव्य-पालन से आत्मशक्ति और ईश्वरीय शक्ति का प्रस्फुरण होता है, जैसा कि हम व्याध के जीवन में देखते हैं।

कर्तव्य-पालन से उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति

प्राय: लोग सोचते हैं कि हमें हमारे योग्य काम नहीं मिला। हमारी इतनी क्षमता है, हमारी इतनी योग्यता है, लेकिन हमें सुअवसर नहीं मिल रहा है। हमसे कम शिक्षित लोग विशेष सुविधा पाकर बड़े पद प्राप्त कर ले रहे हैं और हमलोग उससे वंचित हो जा रहे हैं इत्यादि। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, मानव स्वभाव की एक विशेष दुर्बलता यह है कि वह स्वयं अपनी ओर दृष्टि नहीं डालता। वह सोचता है कि मैं भी राजा के सिंहासन पर बैठने के योग्य हूँ। यदि मान लिया जाये कि वह है भी, तो सबसे पहले उसे यह दिखा देना चाहिये कि वह अपनी वर्तमान स्थिति का कर्तव्य भलीभाँति पूर्ण कर चुका है। ऐसा होने पर उसके सामने उच्चतर कर्तव्य आयेंगे। जब हम संसार में लगन से कार्य करते हैं, तो प्रकृति हमें चारों ओर से धक्के देने लगती है और शीघ्र ही हमें इस योग्य बना देती है कि हम अपनी स्थिति प्राप्त कर सकें।''[८]

इस प्रकार हम अपनी कर्तव्यनिष्ठा के द्वारा अपने अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। अत: अब क्रान्ति होगी कर्तव्य-पालन की, अधिकारों की नहीं। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य ३/१२-१३ **२.** वि.सा. ९/१८४ **३.** वि.सा. ५/१४० **४.** वि.सा. ३/४१ **५.** वि.सा. ५/३९५ **६.** ३/४०-४१ **७.** वि.सा. ९/१८४ **८.** ३/४१

विवेकानन्द के विचारों की शाश्वत प्रासंगिकता

नृपेन्द्र अभिषेक

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता और ज्ञान के सशक्त दूत थे। स्वामी विवेकानन्द ने न केवल भारतीय संस्कृति और धर्म को विश्व-पटल पर प्रस्तुत किया, बल्कि सामाजिक जागरूकता और राष्ट्रीय चेतना का अलख भी जगाया। उनके विचारों ने पूरे विश्व में मानवता को एक नई दिशा दी। उनके विचार न केवल उनके समय के लिए प्रासंगिक थे, बल्कि आज के युग में भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। उनके उपदेश और जीवन के आदर्श उन सभी के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं, जो आत्मा की खोज, मानवता की सेवा और राष्ट्र-निर्माण में रुचि रखते हैं।

आत्म-ज्ञान और आत्मविश्वास

विवेकानन्द ने आत्म-ज्ञान और आत्मविश्वास पर विशेष जोर दिया। उनका मानना था कि व्यक्ति में अनन्त शक्तियाँ होती हैं और इनका अनुभव करने के लिए आत्मज्ञान आवश्यक है। विवेकानन्द कहते थे, ''उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत।'' विवेकानन्द के ये विचार आज के युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। आधुनिक युग में, जब लोग आत्म-सन्देह और असुरक्षा से घिरे हुए हैं, तब आत्मज्ञान और आत्मविश्वास का विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं से निपटने और अपने जीवन को सफल बनाने में विवेकानन्द के ये विचार मार्गदर्शन का काम करते हैं।

समाजसेवा और परोपकार : विवेकानन्द ने मानव सेवा को ही सच्चा धर्म बताया। उनके अनुसार, ''ईश्वर की सेवा मानव-सेवा में निहित है।'' उनके इस विचार में एकता, करुणा और समानता के प्रति अद्‌भुत दृष्टिकोण है। विवेकानन्द कहते थे कि यदि किसी की सेवा करने का अवसर नहीं मिलता, तो वह जीवन व्यर्थ है। उनके सेवा और परोपकार के विचार अत्यन्त प्रासंगिक हैं। उनके विचारों से प्रेरणा लेकर समाज में समानता, सह-अस्तित्व और सेवा भावना को बढ़ावा दिया जा सकता है।

शिक्षा और युवा सशक्तिकरण : स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया और इसे मानव-जीवन का एक मूलभूत आधार बताया। उन्होंने कहा कि ''शिक्षा वह है, जो जीवन की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाती है।'' उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य न केवल जानकारी प्रदान करना है, बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। विवेकानन्द ने युवाओं को राष्ट्र की सबसे बड़ी सम्पत्ति और भविष्य का निर्माता बताया।

आज की शिक्षा-प्रणाली में विवेकानन्द के विचारों की अत्यन्त आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली केवल ज्ञान और सूचना पर जोर देती है, किन्तु विवेकानन्द की शिक्षा का लक्ष्य आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास और मानवता का विकास होना चाहिए।

धार्मिक सहिष्णुता और सार्वभौमिकता

स्वामी विवेकानन्द ने धार्मिक सहिष्णुता और सार्वभौमिकता का संदेश दिया। १८९३ में शिकागो के विश्वधर्म महासभा में उनके ऐतिहासिक व्याख्यान ने सम्पूर्ण विश्व को धार्मिक सहिष्णुता और विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। उन्होंने कहा कि सभी धर्म सत्य हैं और उनका उद्देश्य एक ही है, केवल उनके मार्ग भिन्न हैं।

आज के युग में जब धार्मिक असहिष्णुता और विभाजन बढ़ रहे हैं, तो विवेकानन्द के विचार विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। उनके ये विचार हमें एक दूसरे के धर्म का सम्मान करने और समग्र रूप से मानवता की उन्नति के लिए कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। धार्मिक सहिष्णुता से ही समाज में शान्ति और सामंजस्य स्थापित हो सकता है।

महिला सशक्तिकरण : विवेकानन्द कहते थे कि समाज का विकास तभी सम्भव है, जब महिलाएँ शिक्षित और सशक्त हों। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक स्वतन्त्रता पर बल दिया। उनके अनुसार, ''कोई भी राष्ट्र तब तक महान नहीं बन सकता, जब तक वहाँ की महिलाएँ समान अधिकारों के साथ समाज का हिस्सा न हों।'' विवेकानन्द का यह दृष्टिकोण तत्कालीन समाज के लिए बहुत क्रान्तिकारी था।

आज के युग में जब महिलाओं के अधिकारों और

सशक्तिकरण की दिशा में बड़े कदम उठाए जा रहे हैं, तब विवेकानन्द के विचार और भी प्रासंगिक हो गए हैं। उनके विचार महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। महिला सशक्तिकरण आज किसी भी समाज और राष्ट्र के समग्र विकास के लिए अत्यावश्यक है।

राष्ट्रीयता और राष्ट्र-निर्माण : विवेकानन्द का भारत के प्रति प्रेम और गर्व अद्वितीय था। वे मानते थे कि भारत एक महान देश है, जिसकी संस्कृति, परम्पराएँ और आध्यात्मिकता विश्व को मार्गदर्शन दे सकते हैं। उन्होंने भारतीयों को उनके गौरवशाली इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर की याद दिलाई और उन्हें आत्मसम्मान और आत्मबल से भर दिया। विवेकानन्द ने कहा था कि यदि हम एक सबल और सशक्त राष्ट्र बनाना चाहते हैं, तो हर नागरिक को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना होगा।

आज के समय में जब राष्ट्रवाद और देशप्रेम पर व्यापक चर्चा हो रही है, तब विवेकानन्द के ये विचार मार्गदर्शक हैं। उनका राष्ट-निर्माण का दृष्टिकोण युवाओं को देश के प्रति जागरूक और जिम्मेदार बनाने में सहायक हो सकता है। विवेकानन्द के अनुसार, सशक्त राष्ट्र-निर्माण में प्रत्येक नागरिक का योगदान आवश्यक है।

व्यक्तिगत विकास और आध्यात्मिकता : स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि सच्ची आध्यात्मिकता व्यक्ति के भीतर होती है। यह किसी बाह्याडम्बर से नहीं जुड़ी है। उनके अनुसार आत्म-चिन्तन और ध्यान से व्यक्ति अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव कर सकता है और अपनी शक्तियों को जागृत कर सकता है। उन्होंने आध्यात्मिकता को व्यक्ति के आत्मिक, मानसिक और शारीरिक विकास के लिये महत्त्वपूर्ण बताया।

वर्तमान समय में जब लोग बाहरी सुख और सफलता की दौड़ में मानसिक तनाव और असंतोष का सामना कर रहे हैं, विवेकानन्द का आध्यात्मिक दृष्टिकोण मानसिक संतुलन और आन्तरिक शान्ति पाने का एक अद्भुत साधन हो सकता है। ध्यान और आत्मचिन्तन से व्यक्ति अपने भीतर की गहराइयों को समझ सकता है और सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकता है।

साहस और निडरता : विवेकानन्द साहस और निडरता के प्रतीक थे। उन्होंने हमेशा यह सन्देश दिया कि हमें अपने जीवन में निडरता और साहस के साथ आगे बढ़ना चाहिए। उनका मानना था कि डर ही वह तत्त्व है, जो व्यक्ति की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा बनता है। उनके अनुसार, 'डरो मत, क्योंकि तुम्हारा डर तुम्हारे ही विरुद्ध काम करता है।'

यह विचार विशेष रूप से आज के समाज में महत्त्वपूर्ण है। जीवन में चुनौतियों और संघर्षों का सामना करना एक सामान्य घटना बन चुकी है। विवेकानन्द का यह साहसिक दृष्टिकोण युवाओं को निडर होकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

नैतिकता और चरित्र-निर्माण : विवेकानन्द कहते थे कि किसी भी समाज की उन्नति उसके नागरिकों के चरित्र पर निर्भर करती है। नैतिकता और चरित्र-निर्माण ही व्यक्ति की सच्ची पूँजी है। विवेकानन्द ने युवाओं को चरित्र और नैतिकता के सिद्धान्तों का पालन करने की प्रेरणा दी।

आज के समय में, जब समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, विवेकानन्द का यह विचार अत्यधिक प्रासंगिक है। उनके विचार हमें यह याद दिलाते हैं कि नैतिकता और चरित्र ही समाज की नींव हैं। एक सबल और नैतिक समाज का निर्माण विवेकानन्द के विचारों के अनुसरण से सम्भव हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के विचार, उनके आदर्श और उनके जीवन की शिक्षाएँ आज भी सभी के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उनका चिन्तन समाज को मानवता की सेवा, सहिष्णुता, शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाता है। विवेकानन्द ने मानवता के वास्तविक अर्थ को समझाते हुए लोगों को प्रेरित किया कि वे अपने भीतर की शक्ति को पहचानें और समाज के कल्याण में योगदान दें।

उनके विचारों का प्रभाव केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व को दिशा देने की क्षमता रखते हैं। विवेकानन्द के विचार आज के युग में भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके समय में थे। वे आज भी मानवता को एक नई दिशा देने और उसे सच्चे अर्थों में समृद्ध बनाने में सहायक हैं। ○○○

सुभाषचन्द्र बोस में क्रान्ति की चिनगारी : स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती विशेष

ब्रह्मचारी वेदगम्यचैतन्य

रामकृष्ण मठ, श्रीभूमि, आसाम

स्वतन्त्रता केवल राजनैतिक मुक्ति नहीं, बल्कि आत्मा की मुक्ति है, यही दृष्टि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन की धुरी रही। वे केवल एक सेनापति नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक योद्धा थे, जिनकी क्रान्ति बाह्य थी, पर प्रेरणा आन्तरिक थी। उनका जीवन भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक ऐसा अध्याय है, जहाँ नेतृत्व, आदर्श और आत्मबल का समन्वय मिलता है। नेताजी का जीवन यथार्थ में तब रूप लेता है, जब हम उनके व्यक्तित्व के पीछे कार्य कर रही प्रेरणाओं को समझते हैं। उनमें सबसे प्रमुख स्वामी विवेकानन्द की ओजस्वी शिक्षाएँ थीं। सुभाष बाबू जब केवल पन्द्रह वर्ष के थे, तभी उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की रचनाएँ पढ़ी और उनका मन पूरी तरह बदल गया। वे कहते थे, 'यदि किसी ने मेरे जीवन को सर्वाधिक प्रेरित किया, तो वे स्वामी विवेकानन्द हैं।' यह एक वाक्य नहीं, उनकी आत्मा की पुकार थी।

कहा जाता है कि किशोर सुभाष जब बेलूड़ मठ पहली बार गए, तो उन्होंने वहाँ गंगा के किनारे बैठकर ध्यान किया और उस शान्त ऊर्जा को अनुभव किया, जिसने उनके जीवन को दिशा दी। उनका स्वामीजी के प्रति यह समर्पण केवल वैचारिक नहीं था, बल्कि उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के संन्यासी जीवन, साहस, राष्ट्रवाद और आत्मविश्वास को अपने जीवन में उतार लिया। बेलूड़ मठ के तत्कालीन संन्यासियों के साथ उनका नियमित सम्पर्क था। वे स्वामी प्रेमेशानन्द, स्वामी निरंजनानन्द आदि से मार्गदर्शन लिया करते थे। नेताजी के पत्रों में भी स्वामी विवेकानन्द का उल्लेख मिलता है। अपने भाई शरतचन्द्र बोस को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा, '' Swamiji's message has awakened my soul. I feel I must do something for Mother India, not in thught, but in action.'' – स्वामी विवेकानन्द के संदेश ने मेरी आत्मा को जाग्रत कर दिया है। मैं अनुभव करता हूँ, मैं भारतमाता के लिये कुछ अवश्य करूँगा, केवल विचारों से नहीं, अपितु कार्यरूप में।'' वे स्वामी विवेकानन्द को केवल गुरु नहीं, अपितु भारतमाता की वाणी मानते थे।

नेताजी का यह आध्यात्मिक साहस तब स्पष्ट हुआ, जब उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा (ICS) जैसी प्रतिष्ठित सेवा को ठुकरा दिया। यह निर्णय उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के उस कथन से प्रेरित होकर लिया कि ''संन्यास वही नहीं जो गेरुआ वस्त्र पहन ले, संन्यास वह है, जो मोह से ऊपर उठ जाए।'' उन्होंने देश-सेवा को तपस्या बना लिया। एक बार जब वे बर्मा जेल में थे, उन्होंने गीता और स्वामीजी की रचनाएँ मँगवाने की अनुमति माँगी। बन्दीगृह में भी वे 'कर्मयोग' और 'राष्ट्रीय जागरण' जैसे ग्रन्थों को पढ़ते और चिन्तन करते थे कि भारत की आत्मा को कैसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। उनकी आत्मा को इस विचार ने आन्दोलित किया कि केवल राजनीतिक संगठन से नहीं, बल्कि आत्मा की शक्ति से ही सच्ची स्वतन्त्रता मिलेगी।

ऐसा ही एक प्रेरक प्रसंग १९४१ का है, जब वे कोलकाता में ब्रिटिश नजरबंदी में थे। कठोर निगरानी के बावजूद वे एक भिक्षु के वेश में घर से भाग निकले, यह

भगवद्गीता में वर्णित 'कर्मयोगी' की तरह का साहस था। इस पलायन का उद्देश्य केवल बचना नहीं था, बल्कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए वैश्विक सहयोग जुटाना था। उन्होंने अफगानिस्तान, रूस होते हुए जर्मनी की ओर प्रस्थान किया और वहाँ से स्वतन्त्रता की क्रान्ति का अन्तर्राष्ट्रीय मंच-निर्माण किया। उनका यह संकल्प स्वामी विवेकानन्द के उस आह्वान की गूँज थी कि "उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक लक्ष्य-प्राप्ति न हो जाए।"

१९४३ में नेताजी ने 'आजाद हिन्द फौज' की पुन: स्थापना की और 'झाँसी की रानी रेजीमेंट' जैसी महिला इकाई बनाकर यह स्पष्ट किया कि भारत की क्रान्ति में सभी को समान अवसर है। यह विचार भी स्वामीजी से प्रेरित था, जिन्होंने कहा था कि नारी-शक्ति के बिना भारत का पुनर्जागरण असम्भव है। नेताजी की यह फौज केवल सैन्य संरचना नहीं थी, बल्कि एक राष्ट्रीय चेतना थी, जिसमें जाति, भाषा और क्षेत्र का भेद नहीं था। वे भारत के पहले नेता थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारतीयता को एक जीवन्त इकाई के रूप में देखा।

नेताजी की फौज जब भारत की सीमा में प्रवेश की और कोहिमा तथा इम्फाल तक पहुँची, तब पहली बार ब्रिटिश सरकार को आभास हुआ कि स्वतन्त्रता की लौ केवल भाषणों से नहीं, तलवार की धार से भी सुलग सकती है और जब लाल किले में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर मुकदमा चला, तब पूरे देश में जनविद्रोह फूट पड़ा। रेलवे, डाकघर, यहाँ तक कि नौसेना में विद्रोह हुए। यह विद्रोह नेताजी के ही विचारों और उनकी आत्मशक्ति का परिणाम था, जिसने देशवासियों को यह अनुभव कराया कि वे पराधीन मानसिकता से मुक्त हो सकते हैं।

बेलूड़ मठ से लेकर युद्ध भूमि तक, नेताजी सुभाष का जीवन एक अखण्ड तपस्या था। यह एक ऐसी साधना थी, जो स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं की मूर्त अभिव्यक्ति थी। वे जब भी तनाव में होते, स्वामीजी की जीवनी पढ़ते, उनके उद्धरणों को अपने भाषणों में उद्धृत करते। उन्होंने कहा था, "My pariotism is inspired by Swami Vivekananda, his call has made me what I am" – 'मेरी देशभक्ति स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रेरित है। आज मैं जो कुछ हूँ, उसे उनके आह्वान ने हमें बनाया है।' यह बात सम्पूर्ण रूप से उनके प्रत्येक कर्म में दिखाई देती है। यहाँ तक कि जर्मनी में भारतीय कैदियों के सामने दिये गए अपने ऐतिहासिक भाषणों में उन्होंने स्वामीजी का उल्लेख करते हुए कहा – Our Motherland will be free, because her spirit has been awakened by saints like Vivekananda. – 'हमारी जन्मभूमि स्वतन्त्र होगी, क्योंकि स्वामी विवेकानन्द जैसे सन्तों ने उसकी आत्मा को जगा दिया है।'

आज भारत जब आत्मनिर्भरता, वैज्ञानिक चेतना और सामाजिक समरसता की ओर बढ़ रहा है, तो नेताजी की प्रेरणा और स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाएँ और भी प्रासंगिक हो जाती हैं। यह कोई संयोग नहीं कि २०२२ में दिल्ली के इण्डिया गेट पर नेताजी की भव्य प्रतिमा का अनावरण किया गया था। यह प्रतिमा केवल एक शिल्प नहीं, बल्कि एक चेतना का पुनर्जागरण है, एक संकेत है कि आज भी भारत उनकी सोच और संघर्ष से प्रेरणा ले रहा है। हजारों युवा आज नेताजी के विचारों को आत्मसात् कर रहे हैं। उनका जीवन UPSC (संघ लोक सेवा आयोग) के अभ्यर्थियों, सैन्य अफसरों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और सामान्य जन में भी प्रेरणा का स्रोत है। विवेकानन्द और नेताजी की यह दिव्य सन्धि आज के भारत के लिये अन्धकार में चमकता हुआ प्रकाश-स्तम्भ है, जो यह सिखाता है कि केवल शिक्षा और साहस नहीं, बल्कि चरित्र, आत्मशक्ति और तपस्या के साथ ही राष्ट्रीय पुनर्जागरण सम्भव है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जीवन केवल भारत के इतिहास का पन्ना नहीं, बल्कि एक जीवन्त उपदेश है। एक ऐसा पुरुषार्थ है, जो भारत को केवल स्वतन्त्र नहीं, बल्कि आत्म-ज्ञानी और आत्म-निर्भर बनाने के लिए जिया गया। वे उस पथ के पथिक थे, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने 'आध्यात्मिक राष्ट्रवाद' कहा था, जहाँ क्रान्ति केवल तलवार से नहीं, आत्मा से भी होती है। OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास – बिपिन चन्द्र **२.** नेताजी : ए बायोग्राफी - सुवीर घोष **३.** Netaji Subhas Chandra Bose Letters to Family - Edited by Sisir Kumar Bose **४.** The Springing Tiger – Hugh Toye **५.** विवेकानन्द साहित्य समग्र – रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ **६.** सुभाष और विवेकानन्द : एक आध्यात्मिक संवाद – डॉ. तन्मय गोस्वामी **७.** Netaji Research Bureau Archives – Kolkata **८.** Indian National Army and its Trials - National Archives of India **९.** प्रधानमन्त्री कार्यालय – इण्डिया गेट नेताजी प्रतिमा उद्घाटन भाषण (२०२२)

स्वामी विवेकानन्द की संगीत-कलापरक दृष्टि

गौरीशंकर वैश्य, लखनऊ

स्वामी विवेकानन्द (१२ जनवरी, १८८३ – ४ जुलाई, १९०२) अपने समकालीन भारत के सबसे प्रभावशाली दार्शनिकों और समाज-सुधारकों में से एक थे और पश्चिमी जगत में वेदान्त के सबसे बड़े प्रसारक थे। उन्होंने भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा में योगदान दिया। वे महान देशभक्त, सन्त, वक्ता, विचारक, लेखक, मनीषी और मानव-प्रेमी थे। उन्हें घुड़सवारी, तैराकी और कुश्ती का भी शौक था। उनका जन्मदिन भारत में 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

यह बहुत ही कम लोग जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्द संगती-कला के अप्रतिम अनुरागी थे तथा कबीर और गुरुनानक कोटि के लब्धप्रतिष्ठ कवि भी थे। उनके द्वारा कला, संगीत, गीत, भजन, गायन और वादन के अनेक प्रमाण मिलते हैं। कवि के रूप में आपकी लिखी कृति भी पायी गई है। वे कुशल संगीतज्ञ, प्रतिभाशाली गायक, मृदंग वादक थे। वे बाँसुरी, सितार, इसराज और सारंगी बजाने में निपुण थे। श्रीरामकृष्ण देव की आरती और स्तोत्र उन्होंने ही रचा और संगीतबद्ध किया।

उन्होंने प्रारम्भ में संगीत-शिक्षा अपने पिता से पायी। किशोरावस्था में उन्होंने वेणी माधव अधिकारी से ध्रुपद, उस्ताद अहमद खाँ से ख्याल गायन और काशी घोषाल से पखावज बजाना सीखा था। गुरु रामकृष्ण से उनका सम्बन्ध संगीत से ही बना था। एक दिन किशोर नरेन्द्र (बचपन का नाम) से दो-तीन भजन सुनकर श्रीरामकृष्ण परमहंस अत्यधिक प्रसन्न हुए थे।

सांगीतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव उनकी संवाद शैली और भाषण कला पर भी बहुत पड़ा था। उन्हें सुनने के बाद रोमाँ रोलाँ ने कहा था – 'उनके शब्द महान संगीत हैं, बीथोवेन संगीत शैली के समान हैं और हैण्डेल के समूहगानों के छन्द प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं।'' स्वामीजी की चित्रकला, वास्तुकला और स्थापत्यकला के प्रति गहन अभिरुचि थी। वे प्रमुख कलाओं की समझ रखनेवाले थे। स्थापत्यकला से सम्बन्धित उनकी सूक्ष्म दृष्टि से की गई एक टिप्पणी मननीय है –

''लोग कहते हैं, कलकत्ता महलों का नगर है, परन्तु यहाँ के भवन विशुद्ध हिन्दू स्थापत्य जैसे लगते हैं। यदि एक धर्मशाला को देखो, तो लगेगा कि वह खाली बाँहों से तुम्हें अपनी शरण में लेने के लिये पुकार रही है और कह रही है कि मेरे निर्विशेष आतिथ्य का अंश ग्रहण करो। किसी मन्दिर को देखो, तो उसमें और उसके आसपास दैवी वातावरण निश्चय ही मिलेगा।''

देश के नवयुवकों में शक्ति का संचार करने के लिए संगीत के वाद्यों तथा गायन शैली के बारे में स्वामीजी ने कहा – ''डमरू, शृंग बजाना होगा, नगाड़े में ब्रह्म रुद्र ताल का दुन्दुभि-नाद उठाना होगा, महावीर-महावीर की ध्वनि तथा हर-हर, बम-बम शब्द से दिग्दिगन्त कम्पित कर देना होगा। जिन सब गीत वाद्यों से कोमल भाव उद्दीप्त होते हैं, उन सबको थोड़े दिनों के लिए अब बन्द रखना होगा।''

संगीत के आदर्श रूप के बारे में स्वामीजी ने कहा था कि – ''ध्रुपद और ख्याल आदि में एक विज्ञान है, किन्तु विरह तथा ऐसी अन्य रचनाओं में ही सच्चा संगीत है, क्योंकि वहाँ विशुद्ध प्रेम-भाव है। लोकगीतों की मधुरता, शास्त्रीय संगीत का विज्ञान और कीर्तन भाव, इन्हें मिलाने से आदर्श संगीत की सृष्टि होगी।''

स्वामीजी एक कलामर्मज्ञ की भाँति फोटोग्राफी – चित्रशैली के पड़नेवाले प्रभाव को रेखांकित करते हुए कहते हैं – ''पूर्व काल के शिल्पकार अपने-अपने मस्तिष्क के नये-नये भाव निकालने तथा उन्हीं भावों को चित्रों द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया करते थे। आजकल फोटो जैसे चित्र होने के कारण मस्तिष्क के प्रयोग की शक्ति और प्रयत्न लुप्त होते जा रहे हैं।''

विवेकानन्दजी ने पेरिस की एक प्रदर्शनी में पत्थर की एक मूर्ति देखी। मूर्ति के परिचय में लिखा था – ''प्रकृति का अनावरण करती हुई कला अर्थात् शिल्पी प्रकृति के घूँघट को अपने हाथ से हटाकर भीतर के रूप-सौन्दर्य को देखता है।'' शिल्पी द्वारा प्रकट भावों की उन्होंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी।

एक प्रसंग में भारतीय और पश्चिमी कलाओं में अन्तर स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा – ''यूनानी कला का रहस्य है, प्रकृति के सूक्ष्मतम विवरणों तक का अनुकरण करना, परन्तु भारतीय कला का रहस्य है आदर्शों को अभिव्यक्त करना।''

स्वामीजी के अनुसार ''मनुष्य जिस चीज का निर्माण करता है, उससे किसी अव्यक्त भाव को व्यक्त करने का नाम ही शिल्प है। जिसमें भाव की अभिव्यक्ति नहीं, उसमें रंग-बिरंगी चकाचौंध रहने पर भी उसे वास्तव में शिल्प नहीं कहा जा सकता।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने नाट्य विधा पर एक विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी करते हुए उसे कलाओं में सबसे कठिनतम कला बताया, क्योंकि इसमें दो इंद्रियाँ एक साथ प्रभावित करती हैं। प्रथम-कान, दूसरी-आँखें। दृश्य का चित्रण करने में यदि एक ही विषय का चित्रण हो जाए तो पर्याप्त है। परन्तु अनेक विषयों का चित्रांकन करके भी केन्द्रीय रस अक्षुण्ण रखना पड़ता है। दूसरी समस्या है – मंच-व्यवस्था। इसमें विविध वस्तुओं को इस प्रकार दर्शाना पड़ता है कि केन्द्रीय रस जीवन्त प्रतीत हो।

आधुनिक राष्ट्रगुरु, धर्म और आध्यात्मिक पथ के पुरोधा एक संन्यासी की यह विलक्षण उक्ति अवलोकनीय है – ''नाटक और संगीत स्वयं धर्म है। कोई भी गीत क्यों न हो, प्रेमगीत हो या कोई अन्य गीत, कोई चिन्ता नहीं। यदि उस गीत में कोई व्यक्ति अपनी पूरी आत्मा उड़ेल दे, तो बस उसी से उसको मुक्ति मिल जाती है।'' प्रश्न उठता है कि क्या कलाएँ मुक्ति की ओर ले जाती हैं? तो भारतीय अध्यात्म इसका उत्तर देता है – हाँ। कहा गया है – 'सा विद्या या विमुक्तये' – विद्या वह है, जो मुक्त करे।'

प्राच्य और पाश्चात्य संगीत के विषय में स्वामी विवेकानन्द जी का कथन है – ''पाश्चात्य संगीत बहुत उत्कृष्ट है, उसमें गीत माधुरी, लय, चरम सीमा तक प्राप्त हो चुकी है। यह और बात है कि हमारे अनभ्यस्त कानों को पाश्चात्य संगीत रुचिकर प्रतीत नहीं होता। पहले हमारा भी यही दृष्टिकोण था, पर जब मैं उनके संगीत को ध्यानपूर्वक सुनने लगा और उस शास्त्र का अध्ययन किया, तो प्रंशसा किए बिना नहीं रह सका। हमारा संगीत केवल कीर्तन और ध्रुपद में ही शुद्ध रूप में जीवित है। जब तक प्रत्येक सुर, हर एक स्तर पर पूरा नहीं गाया जाता, उत्कृष्ट संगीत की सृष्टि नहीं हो सकती।''

स्वामीजी के विचारों के अनेक दुर्लभ रत्न, जिनमें विलक्षण कला-दृष्टि और दार्शनिक चिन्तन प्रतिबिम्बित होता है, उनके सारगर्भित व्याख्यानों, पत्रों और वार्तालापों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। इससे उनकी प्रसिद्धि देश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वभर में है।

स्वामीजी कुशल संगीतकार के साथ एक सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कवि भी थे। यद्यपि उनके द्वारा रचित कविताएँ, गीत और भक्ति-रचनाएँ संख्या में बहुत कम हैं, तथापि वे सारगर्भित एवं प्रिय हैं। उनकी कविताएँ काव्य पक्ष तथा भाव पक्ष; दोनों दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उन्होंने प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य, ईश्वरत्व की महत्ता तथा भारत माता के प्रति समर्पण-भाव से अभिरंजित काव्य की सर्जना ही अधिक की है, जिसमें काव्य-प्रतिभा और कल्पना-शक्ति चरम सीमा को स्पर्श करती है। एक कविता का सार-भाव द्रष्टव्य है –

गहन दुख
वह आनन्द है, जो कभी व्यक्त नहीं हुआ
और अनभोगा, गहन दुख है
अमर जीवन, जो जिया नहीं गया
और अनन्त मृत्यु जिस पर
किसी को शोक नहीं हुआ,
न दुख है, न सुख,
न रात है, न प्रात है,
सत्य वह है,
जो इन्हें मिलता है,
सत्य वह है,
जो उन्हें जोड़ता है,
वह संगीत में मधुर विराम
पावन छंद का मधु यति है
मुखरता के मध्य मौन।

OOO

सरस्वती पूजा विशेष

शक्तिस्वरूपिणी माँ सरस्वती

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हमारी सनातन वैदिक संस्कृति ने नारी को शक्ति, विद्या, बुद्धि, ऐश्वर्य आदि की जननी माना है। कहीं शक्तिस्वरूपिणी दुर्गा, तो कहीं असुरदलनी काली, कहीं धान्याधिष्ठात्री लक्ष्मी, तो कहीं विद्यादायिनी सरस्वती आदि। बसन्त काल का प्रारम्भ ही हमें सरस्वती पूजा का स्मरण कराता है। सरस्वती पूजा के दिन से ही बसन्त ऋतु तथा होलिकोत्सव का आरम्भ होता है। माँ सरस्वती उन सनातन वैदिक देवियों में से एक हैं, जो कवियों, मनीषियों की कुल-देवी तथा विद्वानों और छात्रों की इष्ट-देवी हैं। विद्यालय और पुस्तकालय देवी सरस्वती के मन्दिर हैं, तो विद्यार्थी उनके मुख्य उपासक हैं।

सामान्यत: भगवती सरस्वती कहीं चतुर्भुजा, कहीं द्विभुजा, चन्द्रमा के समान शुभ्रकान्ति वाली, हाथों में वीणा व वरमुद्रा धारण किये, सतोगुणी तथा हंसवाहिनी हैं। इन भगवती का हमारे रामकृष्ण-मठ की परम्परा में वागीश्वरी रूप में ध्यान यथास्वरूप है –

ॐ तरुणशकलमिन्दो बिभ्रती शुभ्रकान्तिः।
कुचभरणमितांगी सन्निषण्णा सिताब्जे।।
निजकरकमलोद्यल्लेखनी पुस्तकश्रीः।
सकलविभवसिद्ध्यै पातु वाग्देवता नः।।

कहीं-कहीं इनका चतुर्भुज स्वरूप में दर्शन होता है, तो कहीं महासरस्वती के रूप में अष्टभुजी स्वरूप में। तान्त्रिक स्वरूप में देवी दशमहाविद्याओं में से एक मातंगी के रूप में दर्शन देती हैं। सरस्वतीजी को सारदा, वाग्देवी, ब्रह्माणी, विद्याधिष्ठात्री, वाणी, सर्वकण्ठवासिनी, सर्वजिह्वाग्रवासिनी, वीणापाणि, इला, भारती, सर्वाम्बिका, गद्यवासिनी, हंसवाहिनी, सुमतिदायिनी, पुस्तकवासिनी, ग्रन्थबीजस्वरूपा आदि नामों से जाना जाता है।

कल्पान्तर की कथानुसार सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री थीं और श्रीविष्णु की प्रियतमा। श्रीमद्देवीभागवत में ऐसा ही एक श्लोक मिलता है –

ॐ सा मे भवतु जिह्वायां वीणा-पुस्तक-धारिणी।
मुरारीवल्लभा देवी सर्वशुक्ला सरस्वती।।

भागवत महापुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथा आती है कि मूल प्रकृति सृष्टि के प्रयोजनार्थ दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री, इन पाँच नामों में आविर्भूत हुई। ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणेश खण्ड में उल्लिखित है –

सा च शक्तिः सृष्टिकाले पंचधा चेश्वरेच्छया।
राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती।।

शाक्त ग्रन्थों में मूल प्रकृति द्वारा सृष्टि-रचना के लिए 'ऐं' बीज मन्त्र देने की बात है। ब्रह्मा ने इसकी आराधना की, जिससे देवी सरस्वती आविर्भूत हुईं और सृष्टि में सहायक हुईं। भगवती सरस्वती ने ही वरदान के समय कुम्भकर्ण की जिह्वा फिसला कर छह माह सोने और कुछ क्षण ही जागने का वरदान मँगवाकर देवताओं की रक्षा की थी। रावण की जिह्वा पर विराज कर देवी सरस्वती ने शिव ताण्डव स्तोत्र की रचना करवाकर उसे प्रलयंकर के कोप से बचाया था। देवताओं के आग्रह पर इन्होंने ही मंथरा की बुद्धि फेर कर रावण-वधार्थ राम को वनवास भेजवाया था। शुंभ-निशुंभ के आतंक से देवताओं का त्राण करने के लिये इन्हीं ने महासरस्वती का रूप धारण कर उन राक्षसों का वध किया था। सर्वप्रथम गोलोक धाम में श्रीकृष्ण ने स्वयं भगवती सरस्वती की पूजा की थी। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, सनकादि मुनीश्वर, देवता, मुनिगण, राजा और मनुष्य आदि ने सरस्वती की उपासना की। तभी से सरस्वती की पूजा सम्पूर्ण प्राणी करने लगे। देवीभागवत में श्रीनारायण ने स्वमुख से नारद को सरस्वती पूजा का सम्पूर्ण विवरण दिया है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सरस्वती कवच का सुन्दर वर्णन भृगु ऋषि से किया था। जगज्जननी सरस्वती की पूजा-विधि

संयुक्त कण्वशाखोक्त पद्धति से की जाती है। विवाद के कारण महर्षि याज्ञवल्क्य को उनके गुरु वैशम्पायन जी ने शाप दिया कि वे उनकी पढ़ाई यजुर्वेद की शाखा को उगल दें। गुरु की आज्ञा से याज्ञवल्क्यजी ने अन्नरूप में यजुर्वेद की वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजी के अन्य शिष्यों ने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया, यजुर्वेद की वही शाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। वेद-ज्ञान से शून्य याज्ञवल्क्यजी ने सूर्य से वेद और वेदांग का अध्ययन किया, परन्तु स्मरणशक्ति की प्राप्ति हेतु सूर्य के आदेशानुसार उन्होंने सरस्वती-उपासना कर वाणी-स्तोत्र की रचना की –

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेव हततेजसम्।
गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्।।
ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते।
प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिकाम्।।

इत्यादि स्तोत्रों द्वारा उन्होंने सरस्वती को प्रसन्न कर स्मरण-शक्ति प्राप्त किया। दुर्गा-पूजा में सरस्वती माँ दुर्गा के वामभाग में स्थापित की जाती हैं। इनके बिना दुर्गापूजा पूर्ण नहीं होती।

सरस्वतीजी की पूजा तो हर ऋतु एवं काल में की जाती है, परन्तु विशेष रूप से माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को की जाती है। इस दिन प्रातःकाल पुरोहित द्वारा सरस्वती प्रतिमा का अधिवास कर प्रतिष्ठा की जाती है और उसके बाद यथाशक्ति उपचार पूजन करने के बाद देवी लक्ष्मी, नारायणी, पुस्तक, लेखनी, मसाधार, वाद्ययन्त्रों तथा वाहन हंस की पूजा की जाती है। तत्पश्चात् विद्यार्थी तथा पूजा में उपस्थित सभी व्यक्ति भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि अर्पित करते हैं। तत्पश्चात् स्ववेदोक्त हवन व आरती कर प्रसाद-वितरण किया जाता है। दूसरे दिन दधिकर्मा कर देवी को मन्त्र-विसर्जन दे, सन्ध्याकाल में भक्त भक्तिपूर्वक नम आँखों से देवी को विदा करते हैं तथा विद्या-बुद्धि माँगते हुए अगले वर्ष शीघ्र आने की कामना करते हैं।

सरस्वतीजी की वास्तविक पूजा तो विद्या का अध्ययन करना होता है। सरस्वती के इस भण्डार की बात भी अनोखी है। कहा गया है –

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।

– हे माँ भारती ! तेरा विलक्षण भण्डार है ! व्यय करने से बढ़ता है और संचय करने से क्षय होने लगता है।

कहा जाता है कि 'विद्या ददाति विनयम्' 'विद्याविहीनः पशुः' – विद्या विनय देती है। विद्या के बिना मनुष्य पशु जैसा होता है।' आज समाज सच्ची विद्या, शिक्षा ग्रहण नहीं करने के कारण मूढ़ता, भ्रान्ति और विडम्बनाओं से ग्रसित है। सरस्वती-पूजा का उद्देश्य सामाजिक एकता और प्रेम को बढ़ावा देना है, शिक्षा और संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर सभ्य बनाना है तथा हार्दिक शुद्धता और धार्मिक भावना को स्थापित करना है। हमारा कर्तव्य है कि हम बच्चों को इस उद्देश्य और भावना से अवगत करायें, उनके वास्तविक कर्त्तव्य से अवगत कराएँ, क्योंकि ये ही हमारे देश के उज्ज्वल भविष्य हैं। बच्चों को इन विचारों से अनुप्राणित करने से ही सरस्वती-पूजा का उद्देश्य सार्थक होगा। अन्त में माँ सरस्वती के चरण कमलों में वन्दना करते हुए सभी के लिए विद्या, बुद्धि व स्मरण शक्ति की कामना करते हैं –

भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः।
वेद-वेदांग-वेदान्त-विद्या-स्थानेभ्य एव च।।

OOO

पुरखों की थाती

गुरुं विना न विद्या स्यात्
फलं नैव विना तरुम्।
नाब्धिपारो विना नावं
धर्मो भावं विना न हि।।८९०।।

– गुरु के बिना विद्या नहीं मिलती, वृक्ष के बिना फल नहीं मिलता, नाव के बिना समुद्र को पार नहीं किया जा सकता, वैसे ही भाव-भक्ति के बिना धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

षड्दर्शनं सूक्ष्मधिया विलोकितं
जटाघनान्ताः पठिताश्च वेदाः।
पुराणग्रन्थाः सकलाः समीक्षिताः
त्वद्भक्तिशून्यं विफलं समस्तम् ।।८९१।।

– मैंने छह दर्शन-शास्त्रों का सूक्ष्म बुद्धि के साथ अध्ययन किया, विधि-विधानपूर्वक वेदों का पाठ किया, समस्त पुराणों पर विचार-विमर्श किया, परन्तु एकमात्र भक्ति के अभाव में वह सब कुछ निष्फल हो गया।

रामगीता (५/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

विश्वामित्रजी सोचने लगे, ईश्वर कहाँ हैं? उन्हें यज्ञ-रक्षा के लिये कैसे बुलाऊँ? तब उन्हें दिखाई पड़ा कि अरे वे ईश्वर तो दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म ले चुके हैं। मानो उन्हें लगने लगा कि मैं कितने बड़े भ्रम में था कि क्षत्रिय को धिक्कार है, ब्राह्मण श्रेष्ठ है। मुझे पहले यह पता होता कि क्षत्रिय कुल में ब्राह्मण आनेवाला है, तो मैं अपना समय क्यों गँवाता। यह तो व्यर्थ ही समय चला गया। क्षत्रिय होने से क्या और ब्राह्मण होने से क्या? भगवान को देखो, वे तो आ गए क्षत्रिय कुल में। उनका महानतम त्याग क्या था? भगवान ऐसे क्षत्रिय के घर में आए, जिसके आचार्य वशिष्ठ हैं। उनसे उनका जीवन भर विरोध रहा। वशिष्ठजी को जितना कष्ट विश्वामित्रजी ने दिया, उसका पुराणों में बहुत ही निष्ठुर वर्णन है। लेकिन मुनि होकर राजभवन में आए। क्षत्रिय के पास आए। मानो उन्होंने उस संस्कार से अपने को मुक्त कर लिया। जाति की श्रेष्ठता नहीं, कुल की श्रेष्ठता नहीं, अगर ईश्वर को पाना है, तो जहाँ मिले, जिससे मिले, जैसे मिले, उसे पाने का उपाय करना चाहिए। अभी तक तो राजा वन में जाया करते थे, पर आज क्या हुआ? जब विश्वामित्रजी आए, तो दशरथजी चकित हो गये। इतने बड़े त्यागी, जिनके पास जाकर बड़े-बड़े राजा नमन करते हैं, वे क्यों आए हैं? उतावलेपन में राजा ने पूछा, आपका आगमन कैसे हुआ? तब उन्होंने बड़ा अनोखा शब्द कहा, मैं माँगने आया हूँ। अब और आश्चर्य! मुनिजी से सब माँगने आते हैं, आप क्या माँगने आए हैं? बोले –

मैं जाचन आयउँ नृप तोही। १/२०६/९

क्या?

अनुज समेत देहु रघुनाथा।

तुम्हारे जो ये दो पुत्र हैं, राम और उसका छोटा भाई, इन दोनों को मुझे दे दो। उससे क्या होगा? बोले –

निसिचर बध मैं होब सनाथा।। १/२०६/१०

इसके द्वारा निशाचरों का वध होगा और मैं सनाथ हो जाऊँगा। अब महाराज दशरथ की ममता सामने आई। ममता बड़ी कठिन है! इसे बार-बार बड़े-बड़े संतों ने गाया – **ममता तू न गइ मेरे मन से।** राजा ने सोचा, मेरे इतने सुकुमार पुत्र हैं और महात्मा बड़े क्रोधी, नहीं कह दूँ, तो समस्या। राजा बोले – क्या कह रहे हैं महाराज! मेरे सुकुमार छोटे पुत्र राक्षसों को कैसे मारेंगे? विश्वमित्रजी देख रहे थे वशिष्ठ जी की ओर। मानो संकेत कर दिया कि आया हूँ, तो लेकर ही जाऊँगा। नहीं कहने से काम नहीं चलेगा। चाहे तुम दुखी होकर दो, चाहे सुखी होकर, देना तो पड़ेगा ही। लेकिन मैं चाहता हूँ – **देहु भूप मन हरषित।** राजा हर्षित होकर दो। मान लो कोई छीनकर ले जाये, बलात ले जाये, उसके स्थान पर तुम दान देने का आनन्द तो पा ही सकते हो। सूत्र दे दिया कि तुम यह समझते हो कि तुम राम से बड़ा स्नेह करते हो! राम पुत्र हैं, बड़े सुकुमार हैं! उनका शब्द था –

देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान। १/२०७/०

यह तुम्हारा मोह है और वह मोह ही तुम्हारे लिए इनको पहचानने में बाधक है। अगर तुम इन्हें जान लेते, तो भी वह समस्या नहीं थी। पर बाल-लीला का आनन्द लेने के लिए तुमने पुत्र बनाया और सचमुच तुम भूल गये हो कि ये कौन हैं? पर उन्होंने स्पष्ट न कहकर केवल सूत्र दे दिया।

उस समय वशिष्ठजी की बड़ी महानता है ! वशिष्ठजी ने दशरथजी से कहा कि आप दे दीजिए। तो इसका अभिप्राय है कि ममता होते हुए भी मानो गुरु का आश्रय लेने पर, गुरु का कार्य यह है कि वह शिष्य के जीवन में ममता को नष्ट करे या ममता को कम करने की चेष्टा करे, या ममता का कोई सदुपयोग बताने की चेष्टा करे। गुरु वशिष्ठ ने तुरन्त कहा कि राजन हर तरह से देखो, तो तुम्हें देना चाहिए। ये तुम्हारे पुत्र नहीं थे। यज्ञ के द्वारा तुम्हें चार पुत्र मिले। आज एक महात्मा यज्ञ के लिए दो पुत्र माँगने आए हैं, तो यही उचित है कि तुम्हें देना चाहिए। उन्होंने यह भी कह दिया कि इनको दोगे, तो तुम घाटे में नहीं रहोगे, इतना अधिक पाओगे कि तुम्हें वैसा लाभ कहीं नहीं मिलेगा। यह ममता का सदुपयोग है। अब दशरथजी ने क्या किया? गोस्वामीजी ने कहा –

अति आदर दोउ तनय बोलाए।
हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए।। १/२०७/९

राजा ने श्रीराम को हृदय से लगा लिया। उनको कई प्रकार से शिक्षा दी कि तुम महर्षि के साथ जा रहे हो, तो उनकी अच्छी तरह से सेवा करना, महाराज के मन में कभी कोई अंसतोष न हो। उसके साथ-साथ महाराज दशरथ ने श्रीराम का हाथ पकड़कर गुरुजी के हाथ में देकर कहा –

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।। १/२०७/१०

आज से मैं मानता हूँ कि इनके पिता मैं नहीं, इनके पिता आप हैं। आप लेकर जा रहे हैं, तो ये मेरे पुत्र मेरे प्राण हैं, लेकिन आप इनके पिता हैं। आज से इनकी रक्षा का, इनके कल्याण का भार आप पर है। मानो यह सारा प्रसंग समर्पण की भावना का है। किसी में समर्पण सरलता से आ गया, किसी में थोड़ा उपदेश से आ गया। यह क्रम है। समर्पण की वृत्ति को ही गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। ९/२७

अर्जुन! तुम जो यज्ञ, जप, दान, श्रेष्ठ कर्म करते हो, वह सब मुझे समर्पित करो। यहाँ ममत्व दशरथजी के समर्पण में बाधक बन रहा था, पर वशिष्ठजी जैसे गुरु ने उनके ममत्व को दिशा दे दी। उन्होंने इस ममत्व को मुनि में आरोपित करा दिया। सचमुच विश्वामित्रजी पिता बन गये। ममत्व जब उनमें आया, तो वह प्रतिष्ठित हो गया। आप एक नई बात पायेंगे। दशरथजी को तो इतना समय लगा। लेकिन भगवान राम वहीं से चले गये क्या? गोस्वामीजी ने कहा कि जब दशरथजी ने उन्हें सौंप दिया, तो भगवान राम कौशल्याजी के पास गये और कौशल्याजी ने विदा कर दिया। अब पिता में इतनी ममता थी, तो कौशल्याजी में तो बहुत होनी चाहिए। पर नहीं-नहीं, कौशल्याजी वही तो हैं, जिनको भगवान राम ने अपने उस रूप का दर्शन करा दिया था। इसीलिए पुत्र को विदा करने में माँ को वह कष्ट नहीं हुआ, जो दशरथजी को हुआ। गोस्वामीजी ने कहा –

जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस। १/२०८/क

राम माँ के भवन में गये, चरणों में प्रणाम किया और चल पड़े। अब दोनों में अन्तर था। महाराज दशरथ में भक्ति तो है, पर उनको विवेक प्रिय नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि महाराज, विवेक आपको देना हो, तो आप इन्हीं को दीजिए। क्योंकि सतरूपाजी ने विवेक माँग लिया था। तो प्रभु ने संकेत में पूछा कि इन्होंने तो आपके वरदान में हिस्सा ले लिया। आपने मुझे पुत्र बनने के लिये कहा, तो इन्होंने भी कहा कि मैं भी चाहती हूँ। लेकिन इन्होंने विवेक माँगा है, तो क्या आप भी लेना चाहेंगे। बोले, महाराज बिलकुल नहीं, वह पूरा विवेक इनको दे दीजिए। मुझे तो –

सुत विषयक तव पद रति होऊ।

आप पुत्र बनिए, तो मैं पूरी तरह से आपको पुत्र ही समझूँ। ईश्वर भूलकर भी न समझूँ। प्रभु ने मुस्कुरा करके देखा। जब तुम मुझे पुत्र मानोगे, तब लोग क्या तुम्हें मूर्ख नहीं कहेंगे? तो राजा ने कहा कि कोई चिन्ता नहीं है। क्यों?

सुत विषइक तव पद रति होऊ।
मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।। १/१५०/५

हमको बुद्धिमान नहीं बनना है। हमको विवेकी नहीं कहलाना है। भले ही लोग हमें मूर्ख कहें, पर हमें तो यह चाहिए। यही अन्तर था। एक में भक्ति के साथ ज्ञान था और दूसरा ज्ञान को स्वीकार नहीं करता। उसे यों कहें कि ज्ञान थोड़ा रस में बाधक तो होता है, लेकिन वह बाधक होना भी अपेक्षित है। उसका संकेत अनेक प्रसंगों में आता

है। श्यामसुन्दर की जो दिव्य सुन्दर लीलाएँ हैं और गोपियाँ जिस प्रकार से उनसे व्यवहार करती हैं, जिस प्रकार से उनकी माखन चोरी को पकड़ती हैं, माँ के पास ले जाती हैं, उन्हें उलाहना देती हैं, वैसा ईश्वर मानकर तो नहीं किया जा सकता। उनके अन्य व्यवहार में भी नहीं लगता कि वे श्रीकृष्ण को ईश्वर मानती हैं। यहाँ तक कि जब वे गोपियों से माखन माँगते हैं, तो वे कह देती हैं कि नाचकर दिखाओ, तब देंगे – **ताहि अहीर की छोहरियाँ छछियाँ भर छाँछ पे नाच नचावैं।** अब यह सारा व्यवहार उन्हें ईश्वर मानकर तो नहीं है। पर एक दिन बड़े कौतुकी श्यामसुन्दर, रास मण्डल के रस की पराकाष्ठा में अन्तर्धान हो गये। ईश्वर अन्तर्धान हो गया। कहाँ चला गया? संयोग का रस था, वियोग में बदल गया। गोपियाँ विलाप करने लगीं। तब गोपियों को वियोग में ईश्वर के ईश्वरत्व की याद आ गई। इसका अर्थ है कि भले ही व्यवहार में रस लेने के लिए वे उन्हें ईश्वर न कहती हों, लेकिन जब श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, तो व्याकुल होकर विलाप करते हुए कहती हैं –

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिल देहिनामन्तरात्म दृक्।

आप केवल यशोदा के पुत्र नहीं हैं, आप तो समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। इसका अभिप्राय यह है कि भक्ति की पराकाष्ठा में रस लेने के लिए ज्ञान को भले ही सामने न लायें, पर वह कहीं न कहीं होना ही चाहिए और अवसर पर उसकी आवश्यकता होती है। इसलिए गोस्वामीजी ने कहा कि भक्ति की परिपूर्णता यही है कि वह श्रुतिसम्मत हो – **श्रुति सम्मत हरि भगतिपथ।** इस बात को मानस में अधिक महत्त्व दिया गया है, जो कुछ होना चाहिए वह श्रुति और वेद सम्मत होना चाहिए। अब इस विषय को अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उस पर विचार करने की स्थिति समाप्त हो चुकी है।

पर उसको दृष्टान्त के रूप में यों कहें कि न्यायालय में जब कोई व्यक्ति न्याय के लिये जाता है, तो वकील कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, वह अपनी बात बुद्धिमानी से रखेगा, पर उसके लिए एक काम अवश्य करना पड़ेगा। क्या? उसको संविधान की धाराओं की दुहाई देनी पड़ती है। इस धारा में ऐसा है और इसलिए इस व्यक्ति को दण्ड मिलना चाहिए। दूसरा भी कहेगा, तो यही कहेगा कि संविधान की इस धारा में यह है, इसलिए इसे दण्ड नहीं मिलना चाहिए। इसका अर्थ है कि चाहे वह कितना भी बुद्धिमान हो, केवल तर्क से कोई बात रखे, तो उसका कोई मूल्य नहीं है, किन्तु जब वह संविधान की दुहाई देगा, तो न्यायाधीश भी जो निर्णय देगा, ठीक उसी आधार पर देगा। इसने यह अपराध किया है, इसलिए इस धारा के अनुसार इसे इस धारा में मैं दण्ड दे रहा हूँ। हमारी एक परम्परा रही है कि जो मूल संविधान है, वह वेद है। इसका अभिप्राय है कि आप जो भी बात कहें, वह वेद के अनुकूल होना चाहिए। इसलिए बार-बार वेद की दुहाई दी गई। वेद का अनुमोदन किया गया, वेद का समर्थन किया गया। मानो वेद ही वह मूल आधार है और उसी के आधार पर सारा निर्णय होना चाहिए। इसीलिए गोस्वामीजी दोहावली रामायण में उत्तरकाण्ड में कहते हैं कि भक्ति को श्रुति के अनुकूल होना चाहिए –

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

वेद के अनुकूल जो भक्ति की व्याख्या है, उसमें विवेक और वैराग्य, इन तीनों का सामंजस्य होना चाहिए। अगर इन तीनों का सामंजस्य न करके व्यक्ति जो करता है, वह मोहवश भटक गया है। गोस्वामीजी के समय भी वक्ता तो थे ही, अनेक रहे होंगे। वे थोड़े दुखी होते थे। एक जनरंजन की प्रवृत्ति मानव समाज में, विद्वानों में भी हर समय होती ही है। दोहावली रामायण में मिलता है कि गोस्वामीजी जब किसी का प्रवचन सुनते थे और देखते थे कि वक्ता वेद को हीन सिद्ध करके केवल किसी किस्सा कहानी के द्वारा अपनी बात रख रहा है और यह बताने की चेष्टा कर रहा है कि वह वेदों से भी ऊँची बात कह रहा है, तो उन्होंने दोहावली रामायण में एक दोहा लिखा। उसमें उन्होंने कहा, मैं कलयुग के इन भक्तों को क्या कहूँ? इनको वेद-पुराणों में उसका उदाहरण नहीं मिलता। तब क्या करते हैं?–

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं बेद पुरान।।
(दोहावली ५५४)

कहानियाँ सुनाकर, उपाख्यान सुनाकर, दोहे बनाकर, भक्ति का निरूपण करते हैं और वेद-पुराण की निन्दा करते हैं। किसी तरह से भक्ति की व्याख्या अनर्थपूर्ण ढंग से की जा रही है। गोस्वामीजी को यह बड़ा अप्रिय लगता है। **(क्रमशः)**

पेड़ पर भूत

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – श्रीधर कृष्ण, चेन्नई

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

नरेन ने खिड़की से बाहर देखा। बाहर खेलने के लिए यह एक सुनहरा दिन था। बारिश से भींगी हुई तेज धूप में झिलमिलाती हुई सड़क, गर्मी से राहत देती हुई ठण्डी आती हवा। वह सीढ़ियों से नीचे आँगन में भागा और जैसे ही उसने मुख्य द्वार खोला, उसकी माँ ने पुकारा, "नरेन, फिर बारिश होगी... अन्दर रहो..." "माँ, मैं घर के अन्दर रहकर थक गया हूँ... मैं केवल सप्तपर्णी के पेड़ तक जा रहा हूँ... बारिश हुई तो उसकी घनी पत्तियाँ मेरी रक्षा करेंगी...।"

शिबू के खिड़की के नीचे खड़े होकर नरेन ने काँच पर एक मुट्ठी कंकड़ फेंका। शिबू ने सिर निकालकर बाहर देखा, उसके चेहरे पर एक मुस्कान दौड़ी। "पेड़ के पास आओ" नरेन ने उससे कहा "और दूसरों को भी लाओ।" वे सब जल्द ही इकट्ठे हो गए, पेड़ के खिले हुए फूल एक बड़े घर के दीवार के पास रत्नों की तरह चमक रहे थे। "तो आज हम कौन-सा खेल खेल रहे हैं नरेन?" शिबू ने पूछा। नरेन एक शाखा पर चढ़ गया और सोचने लगा। कहा – "मान लो कि हम पेड़ पर रहते हैं, नीचे की शाखाओं पर प्रजा है और जो उच्चतम शाखा तक पहुँच जाता है, वह हुआ... राजा!" पागलों जैसी हाथापाई होने लगी, प्रत्येक लड़का एक-दूसरे से ऊपर चढ़ने की कोशिश कर रहा है, सभी राजा बनना चाहते हैं।

अपने बड़े घर से एक वृद्ध व्यक्ति बाहर आकर बरामदे में अपनी छड़ी को पीटा। "काश, बारिश बन्द नहीं होती," वह बड़बड़ाया। "पिछले कुछ दिनों से अच्छा और शान्त था... अब ये बन्दर मेरी शान्ति भंग करने के लिए लौट आए हैं..." उन्होंने उन सबको पुकारा, "अरे बच्चो! तुमलोग क्या कर रहे हो?" लेकिन खेलते हुए लड़कों के दल ने उसे नहीं सुना। हँसते और चिल्लाते हुए वे सप्तपर्णी पर बैठे थे। उनके चेहरे सप्तपर्णी के फूलों की तरह चमक रहे थे। "लड़को" यह कहते हुए वे फिर चिल्लाये और अपनी छड़ी को जोर से पटका।

"सर, क्या है?" नरेन एक चौड़ी शाखा से कूदा। "क्या आप स्वस्थ हैं? क्या आपको हमारी मदद की आवश्यकता है?" बूढ़े ने अपने दाँत पीस लिए। "वास्तव में तुम्हारी मदद की जरूरत है" वे बुदबुदाये। "उसे नेता होना चाहिए... वही सभी परेशानियों की जड़ है... रुको, मैं उसे ठीक कर दूँगा..." जोर से उन्होंने नरेन से कहा, "मैं तुम सबके लिए चिन्तित हूँ... क्या तुम नहीं जानते कि इस पेड़ पर एक दुष्ट आत्मा है? इस पर एक भूत रहता है, जिसकी हत्या कई साल पहले, इसी पेड़ के ठीक नीचे की गई थी... और तब से वह यहीं रह रहा है...।"

लड़कों में सन्नाटा छा गया। शिबू ने नरेन की ओर देखा, उसका हृदय बहुत तेजी से धड़क रहा था। "तुम्हें कैसे पता कि वह यहाँ रहता है?" नरेन ने अपनी ठुड्डी को खुजलाया, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हैरान हो गईं। "क्या आपने इसे देखा है, श्रीमान्?" बूढ़ा व्यक्ति तिरछी नजर से देखता हुआ – "आह, तुम मुझ पर विश्वास नहीं करते।" उन्होंने नाराज होकर कहा, "तुमलोग जैसे चिल्ला रहे हो, उससे निश्चित रूप से भूत जग जायेगा... और क्या तुम जानते हो कि वह क्या करेगा?" नरेन की ओर अपनी पतली बाहें फैलाते हुए, वे कहते रहे। "वह तुम्हें पकड़ लेगा और टहनी की तरह तुम्हारी गोल-मटोल छोटी गर्दन को तोड़ देगा... तड़ाक!" लड़के चिल्लाए, जल्दी से पेड़ से नीचे उतर गए, इसकी शाखायें खतरनाक रूप से हिल

शेष भाग पृष्ठ २५ पर

शास्त्रानुसार श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन

स्वामी दयापूर्णानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

यद्यपि श्रीरामकृष्ण ने शास्त्र-सम्मति और उसके अर्थ को भली-भाँति जाने बिना ही साधना की। परन्तु आदिशक्ति जगदम्बा ने श्रीमाँ सारदा के रूप में स्वयं उनका मार्ग-दर्शन कर उनके जीवन को शास्त्रमर्यादित बना दिया। यही धर्म का सनातन मार्ग है। जगज्जननी काली के दर्शन और विवाह के बाद ब्रह्ममयी श्रीमाँ ने ही उन्हें एक-एक कर अनेक प्रकार की साधनाओं से गुजारा। उनके जीवन के द्वारा शास्त्रों की शाश्वत वाणी और विविध साधनाओं के उद्देश्य पुन: सत्यापित और पुनर्जीवित हुए। एक के बाद एक ये साधनाएँ उनके जीवन में अनायास और स्वाभाविक रूप से आती गईं। वे सभी साधनाएँ शास्त्रानुसार ही हुईं। यह है उनके मार्ग-प्रदर्शक श्रीमाँ की अपार करुणा ! उन्होंने काली-कुल की साधना में सिद्धि प्राप्त की। उन्होंने माँ काली के दर्शन प्राप्त किये। फिर श्रीकुल की उपासना की। लेकिन उन्होंने श्रीविद्या की पूजा किसी मिट्टी की मूर्ति में नहीं की। श्रीविद्या एक दिव्य नारी-शरीर में अवतरित हुई। वह दिव्य नारी श्रीमाँ सारदामणि हैं। वे श्रीविद्या से अभिन्न हैं। श्रीरामकृष्ण ने उनकी पूजा उस नवीन श्रीयन्त्र रूप में, आदिशक्ति के सर्वोच्च स्वरूप में की। उन्होंने श्रीमाँ के माध्यम से ही कांचीपुरम् की अधिष्ठात्री देवी षोडशी, महात्रिपुरसुन्दरी या कामाक्षी की पूजा की।

महालक्ष्मी: महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती।[११]

श्रीमाँ की उक्त रूप में पूजा करते हुए श्रीरामकृष्ण ने उपयुक्त मन्त्रोच्चारण कर उनसे प्रार्थना की, 'हे बाला, हे शाश्वत कुँवारी माते! तुम्हीं माता त्रिपुरसुन्दरी, सभी शक्तियों का स्रोत हो, तुम पूर्णता के द्वार खोलो। इनके मन और शरीर को पवित्र करते हुए, तुम इनमें (श्रीमाँ में) ही स्वयं को प्रकट करो और सब प्रकार से कल्याण करो।' फिर उन्होंने पूजा में श्रीमाँ के विभिन्न अंगों में मंत्र-विन्यास के द्वारा अभेद भावना की। स्वयं को देवी के साथ अभिन्न मानते हुए षोडशोपचार से पूजा की। भोग-निवेदन किया। धीरे-धीरे श्रीमाँ ने बाहरी चेतना खो दी और उपासक भी पूर्णत: समाधिस्थ हो गये।

उस परमानन्द अनुभव में देवी और पूजक आत्मस्वरूप में अभिन्न हो गये।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।[१२]

पूजा के अन्त में श्रीरामकृष्ण ने स्वयं को देवी को समर्पित कर दिया। अपनी सभी साधनाओं के फल को अर्पण कर अपनी जपमाला देवी के चरणों में रखते हुए, उन्होंने माँ से प्रार्थना की, ''हे माँ! तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो, तुम कल्याणदायिनी शिवा हो। हे मात:! तुम सब पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली गौरी हो, तुम नारायण की शक्ति हो, हे माते! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। हे नारायणी, तुम्हारे श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है, मेरा नमस्कार है।'' श्रीमाँ की मानव-लीला आकृति में पूजा समाप्त हो गई। आराधना से मातृमूर्ति की कृपा से सभी ज्ञान के स्रोत का द्वार उन्मोचित हुआ। मानो श्रीरामकृष्ण ने जगत-कल्याण हेतु अपनी दीर्घ तपस्या को मूर्त श्रीयन्त्र मानवी मातृ-प्रतिमा की पूजा के साथ समाप्त किया। इसीलिए श्रीमाँ बाद में कहती थीं, ''ठाकुर सभी प्राणियों में महामाया का स्वरूप देखते

थे। वे मुझे जगत में भगवान के मातृ-भाव को प्रकट करने के लिये रखकर गए हैं।''

देवी श्रीललिता परमेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी का अर्थ है, वह जो तीनों लोकों में दिव्य सौन्दर्यरूपिणी है। उनको नित्य षोडशिका रूप कहा गया है – वे सोलह वर्ष की लड़की जैसी दिखती हैं। उनकी दिव्य महिमा की तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती। 'षोडशी' के रूप में वे सोलह विभिन्न प्रकार की इच्छाओं की प्रतीक हैं, जिनमें सोलह 'नित्य देवियाँ' हैं – कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुंडा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालमालिनी और चित्रा – सोलहवीं नित्य वे स्वयं हैं और अन्य सभी पन्द्रह उनमें निवास करती हैं। वे कुल सोलह का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रत्येक देवी अलग-अलग प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। श्रीरामकृष्ण ने एक बार कहा था, वह सारदा, सरस्वती है, वह ज्ञान देने आई है। वह इस बार अपनी सुन्दरता को छिपाकर आई है, ताकि उसे दोष-दृष्टि से देखकर मानव का कोई अकल्याण न हो। वह दुर्लभतम ज्ञान से पूर्ण है।' श्रीमाँ ने स्वयं ही अपने बारे में कहा था, ''यह माया नहीं तो और क्या है? माया न होने से मेरी ऐसी दशा क्यों होती? वैकुण्ठ के पास लक्ष्मी होकर रहती।''

तदा तदा अवतीर्याहं करिष्यामि अरिसंक्षयम्।[१३]

माया में छिपी क्यों?

इस प्रकार से मायावृत होकर छिपे रहने का एक गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है, जिसे श्रीमाँ ने स्वयं अपने श्रीमुख से कभी कहा था, ''दैवी शक्ति का अत्यधिक प्रकटीकरण भक्तों के मन में भय उत्पन्न करता है। वे ईश्वर के साथ घनिष्ठता का अनुभव नहीं कर पाते।'' इसलिये वे कहतीं थीं, ''मुझे एक मनुष्य ही समझो। मेरे निर्देशों को मानकर अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए अपना कार्य करते रहो। किसी भी प्रकार का भय मत करो।'' मानव-हृदय में अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों के बीच निरन्तर संघर्ष को दैवी शक्तियों के विरुद्ध आसुरी शक्तियों द्वारा छेड़ी गई लड़ाई के रूप में भी जाना जाता है। इसलिए आद्याशक्ति महामाया की कृपा से इन छिपे शत्रुओं से लड़कर जीतने की प्रेरणादात्री के रूप में शास्त्रों में इनका वर्णन किया गया है।

कांची कामकोटी पीठ जगद्गुरु श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी जी भारतीय विद्या भवन से प्रकाशित अपने 'गुरु परम्परा' नामक ग्रन्थ में कहते हैं कि महामाया स्वयं ही गुप्त भाव में अपने स्वरूप को छिपाकर गुरु-रूप में आकर साधकों पर कृपा करती हैं। महामाया काशीधाम में विशालाक्षी देवी के रूप में आकर कमाठा दीक्षा वा स्मरण दीक्षा दिलाती हैं। अर्थात् जैसे एक कछुआ कहीं भी रखे अपने अण्डे का ध्यान रखता है। मदुरै में मीनाक्षी देवी के रूप में माँ नयन दीक्षा व मत्स्य दीक्षा दिलाती हैं। अर्थात् जैसे एक मछली पानी में रहते हुए भी अपने अंडे पर सदा दृष्टि रखती है। कांचीपुरम् में कामाक्षी देवी के रूप में कुक्कुट दीक्षा या स्पर्श दीक्षा प्रदान करती हैं। जिस प्रकार एक मुर्गी अपने अंडे के ऊपर बैठकर उसकी रक्षा करती है, वैसे ही माँ कामाक्षी अपना चरण भक्तों के सिर पर रखकर स्पर्श द्वारा उनको ज्ञान प्रदान करती हैं। श्रीत्रिपुरासुन्दरी स्वयं ज्ञानस्वरूपा ज्ञानप्रदायिनी हैं।

हमें याद होगा कि श्रीमाँ ने भी कामाक्षी देवी के भाव में ही स्वामीजी के शिष्य स्वामी सदानन्द जी के सिर पर दो बार अपने पादपद्म को रखकर आशीर्वाद दिया था। पहली बार की घटना की विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं है, किन्तु दूसरी बार की घटना २५ नवम्बर, १९१० की है। यह घटना बागबाजार मोहल्ला स्थित बोसपारा गली में योगीन-माँ एवं गोलाप-माँ की उपस्थिति में हुई थी। अक्तूबर, १८९१ में स्वामी विवेकानन्द के संन्यासी-शिष्य स्वामी विरजानन्द जी (तत्कालीन ब्रह्मचारी कालीकृष्ण) स्वामी सारदानन्द आदि के साथ श्रीमाँ का दर्शन करने जयरामबाटी गए थे। वापस आने के दिन कालीकृष्ण ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि बैलगाड़ी में बैठकर रवाना होते समय श्रीमाँ अश्रुसिक्त आँखों से जितनी दूर तक दृष्टि जा सकती है, तब तक एक निमेष उन सबकी ओर देखती रहीं। देवी मीनाक्षी भाव में रहने के कारण उनकी आँखें सदा जल में निर्निमेष रहती हैं। गोलाप-माँ और योगीन-माँ भी वहाँ उपस्थित थीं। ब्रह्मचारी अशोककृष्ण ने श्रीमाँ के अन्तर्धान के कुछ सप्ताह पूर्व उद्बोधन कार्यालय में श्रीमाँ से उनकी देवी विशालाक्षी-भाव की वाणी सुनी थी – 'मेरा शरणागत जब तक एक भी व्यक्ति बन्धन में रहेगा, तब तक क्या मैं शान्ति से रह सकती हूँ? मुझे उन सबके साथ रहना होगा। मैंने उन सबके कल्याण का भार लिया है। मुझे उनके बारे में कितनी चिन्ता होती है। निश्चय ही मैं उन लोगों को नहीं छोड़ सकती, जिन्हें मैंने अपना मान लिया है।''

सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम्।[१४]

संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि काली, दुर्गा, चामुण्डा आदि ब्रह्म की परम शक्ति के ही विविध रूप हैं। स्वरूप में वे अभिन्न हैं। इसका रूप-भेद केवल उपासना के क्षेत्र में ही स्वीकार्य है।

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि सभी देवी-मूर्ति एक महामाया के ही विभिन्न रूप हैं – **देव्यः सर्वाश्च मत् रूपं नैतत् ज्ञेयं अतोऽन्यथा।**[१५] श्रीललिता-सहस्रनाम में कहा गया है –

श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी।
चिदग्निकुण्डसम्भूता देवकार्यसमुद्यता।।

अर्थात् महामाया देवों के कार्य को सम्पन्न करने हेतु कृपा कर अपने चित्स्वरूप से प्रकट हुईं। श्रीमाँ कहती हैं, 'दिन-रात मेरा मन ऊँचे स्तर पर रहना चाहता है। मैं लोगों के प्रति दया के कारण इसे नीचे लाती हूँ।' वह सचमुच अभागा है, जो मेरी करुणा प्राप्त नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानती, यहाँ तक कि एक कीड़े को भी नहीं, जिसके प्रति मेरी करुणा न हो।... बेटा! यहाँ आनेवाले कई लोग कुछ भी नहीं करते और न ही कुछ करने का प्रयास करते हैं। उनसे कोई भी पाप नहीं छूटा है। लेकिन जब वे यहाँ आते हैं और मुझे माँ कहकर पुकारते हैं, तो मैं सब कुछ भूल जाती हूँ और उन्हें उनकी योग्यता से कहीं अधिक मिल जाता है।''

श्रीललिता सहस्रनाम में श्रीत्रिपुरासुन्दरी का घनीभूत घृत जैसा रजस्तमःसम्पर्कशून्य शुद्ध सत्त्व घनीभूत मूर्ति रूप वर्णित है। वे सदा अपनी सन्तानों को श्रीविद्या से विभूषित करती हैं। कुब्जिका तन्त्र हमें बताता है –

श्रीदात्री च सदा विद्या श्रीविद्या परिकीर्तिता।
निर्गुणा च महादेवी षोडशी परिकीर्तिता।।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''एक ऐसी शक्ति का विचार करें, जिसे हम सर्वत्र प्रकट होते देखते हैं। वास्तव में वह मूर्तरूप ईश्वर है, जिसे हम चंडी में पाते हैं। लेकिन मेरी बात पर ध्यान दें, ऐसा ईश्वर नहीं, जिसे आप केवल सद्गुणों का भण्डार बना दें। आपके पास दो ईश्वर नहीं हो सकते। आपके पास केवल एक होना चाहिए और उसे अच्छा और बुरा कहने का साहस होना चाहिए।' जब भक्त लोग कभी-कभी श्रीमाँ को सर्वनाशिनी काली कहते थे, तो श्रीमाँ उन्हें रोकते हुये कहती थीं, ''तू जो कुछ भी कह, लेकिन मुझे सर्वनाशिनी मत कह। मेरे बेटे पूरे संसार में हैं। उनका अमंगल होगा।'' श्रीमाँ सदा अपने भक्तों का ध्यान रखती थीं। वे कहती थीं कि यह माता का विशेषाधिकार है कि वह अपने बच्चे की हर प्रकार से सेवा करे, यहाँ तक कि अपने हाथों से उसकी गंदगी भी साफ करे।

श्रीमाँ को अपने बच्चों पर गर्व की कोई सीमा नहीं थी। वे कहतीं थीं, ''मेरे बच्चों में कोई कमियाँ नहीं रहती हैं। यदि मेरे सौ बच्चे भी आ जाएँ, तो मैं उन सबको एक साथ सम्भाल सकती हूँ।'' यह गौरव उनका अधिकार है। क्योंकि श्रीमाँ समग्र विश्व की जन्म-जन्मान्तरों की जननी हैं।

सायाचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति।[१६]

श्रीभगवती ने अपनी परम करुणा से जगतवासियों के लिए सभी ऋद्धि-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त और सुगम कर दिया। श्रीमाँ कहती थीं, ''वह सचमुच अभागा है, जो मेरी करुणा प्राप्त नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानती, यहाँ तक कि एक कीट को भी नहीं, जिसके लिये मुझमें करुणा न हो।' उन्होंने यहाँ तक कहा है, ''यहाँ आनेवाली मेरी सभी सन्तानें पहले से ही मुक्ति पा चुकी हैं। यमराज मेरे बच्चों को नरक में फेंकने का साहस नहीं कर सकता। अपना भविष्य मुझे सौंपकर सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाओ। सदा यह याद रखो कि तुम्हारे पीछे एक है, जो सही समय पर तुम्हारे पास आएगा और तुम्हें अनन्त की ओर ले जाएगा।''

श्रीदुर्गा देवी हिमालय को कहती हैं –

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि।
प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् कर्मवर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्म-ज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु।।[१७]

ज्ञान, भक्ति, कर्मयोग और राजयोग की सहायता से ही ईश्वर-प्राप्ति हो सकती हैं, अन्य किसी दूसरे कर्म से नहीं। श्रुति-स्मृति शास्त्र आदि के अनुसार अपने सत्त्वगुण से उत्पन्न स्वधर्म का पालन करने पर ही अन्त में मुक्ति तथा ज्ञान-प्राप्ति होती है। स्वामी विवेकानन्द प्रवर्तित चार योगों का समन्वय ऐसे शास्त्रवचनों से सिद्ध हो जाता है। किसी के द्वारा स्वामीजी की कर्म-प्रणाली पर शंका करने पर श्रीमाँ ने उसे सही मार्ग बताते हुये सबको उसी दिशा में चलने

के लिए प्रेरित किया – "मेरे बेटे, जगत के दुखों को दूर करने के लिए काम करो। दूसरे के जीवन में खुशी देने पर जीवन का उद्देश्य पूरा होता है।"

प्रसीद भगवति अम्ब प्रसीद भक्तवत्सले।[१८]

अद्वैत उपलब्धि का एक अनुपम ग्रन्थ श्रीत्रिपुरारहस्य में कहा गया है, "जो लोग मेरी माया से मोहित हो गए हैं, वे मुझे पूरी तरह से नहीं जानते। मैं ही सबके द्वारा पूजित होकर इच्छित फल देती हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई भी पूज्य या फलप्रद नहीं है।"[१९] जब एक महिला कुछ बुरा जीवन बिताने के पश्चात् सच्चे मन से पश्चात्ताप की भावना से श्रीमाँ के पास गई और अपनी गलती को स्वीकार कर ली, तो माँ ने उसे बड़े प्रेम से गले लगाते हुए कहा, "तुमने जो कुछ भी किया है, उसके लिए निराश मत हो। तुम अपने सभी पापों से मुक्त हो जाओगी। आओ, मैं तुम्हें दीक्षा देती हूँ? अपना सब कुछ गुरु के चरणों में रख दो और निर्भय हो जाओ।" उन्होंने और भी कहा, "श्रीठाकुर स्वयं इस शरीर में सूक्ष्म रूप में विराजमान हैं। उन्होंने स्वयं घोषणा की है, "मैं सूक्ष्म रूप में तुम्हारे भीतर निवास करूँगा।" वायुपुराण में श्रीमाँ के इस वचन का शास्त्र-प्रमाण देते हुए महादेव ने कहा है –

आत्मानं प्रकृतिं विद्धिं मां विद्धि पुरुषं शिवम्।
भवान् अर्धं शरीरं मे त्वहं तव तथा एव च।।

जगदम्बा की पालिनी वैष्णवी शक्ति सूक्ष्म रूप में हरि और हर एक दूसरे के भीतर विद्यमान रहती है। इसलिये श्रीमाँ हमेशा कहती थीं, 'बेटा, 'भक्त लोग कहते हैं कि मुझमें ही ठाकुर विद्यमान हैं।' 'जो ठाकुर हैं, वही मैं हूँ। मुझे उनके साथ एक समझो।"

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम्।[२०]

श्रीमाँ सतत अपनी सन्तानों को याद करती हैं। क्योंकि विश्व-प्रसविनी होने के कारण वे सबकी माता और शरणदायिनी हैं। वे अपने पति की भी माँ हैं। शास्त्रों में कहा गया है –

ब्रह्मा-विष्णु-शिवीनां च प्रसूते करुणामयि।
जडानां ज्ञानदे देवि त्राहि मां शरणागतम्।।[२१]

– ब्रह्मा, विष्णु और शिव सबको देवी का पुत्र बताया गया है। देवी अपने पुत्र शिव को पति के रूप में स्वीकार करती हैं। किसी ने जब श्रीमाँ से पूछा कि वह ठाकुर को किस दृष्टि से देखती हैं, तो माँ ने निःसंकोच उत्तर दिया, "मैं ठाकुर को संतान भाव से देखती हूँ और पति भाव से भी।" इसे देखते हुए साधकों ने हार मानकर कहा है –

रंग देखे रंगमयीर अवाक होएछि।
ठीक जेनो एक छेले खेला बुझते पेरेछि।

– मैं लीलामयी माँ की लीला देखकर आश्चर्यचकित हूँ। अब समझ गया हूँ कि सब कुछ उन्हीं की लीला है। ऐसे अत्यद्भुत भाव के विषय में भगवती श्रुति चकित होकर कहती हैं – "परास्य शक्ति विविध एवं श्रुयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।"[२२] – महामाया की विविध शक्तियाँ ज्ञान, बल तथा क्रिया स्वभावतः सुनी जाती हैं। श्रीमाँ भी कहती हैं, "माँ के लिए बेटा हमेशा बेटा ही रहता है।" ब्रह्मशक्ति ही महामाया है। ब्रह्म से अभिन्न तुरीयस्वरूपा आद्याशक्ति ज्ञान, इच्छा और क्रिया इन त्रिशक्ति की समष्टिभूता रूप हैं। यह ज्ञान-इच्छा-क्रिया ही ब्रह्म धर्म है। वह धर्म स्वरूपतः धर्मों से अभिन्न है। ब्रह्म और शक्ति अभेद है। वही अव्यक्त महती परमा महामाया व्यष्टि भाव से जब कभी मूर्त रूप में अपनी लीला करती हैं, तब उनकी ही ज्ञान शक्ति को महासरस्वती, इच्छाशक्ति को महाकाली एवं क्रियाशक्ति को महालक्ष्मी नाम से कहा जाता है। यह गुह्य मातृत्व समस्त वेद का मूल तन्त्रशास्त्र का प्रतिपाद्य है – महाकाली तामसी और ऋग्वेदरूपा हैं। महालक्ष्मी राजसी तथा यजुर्वेद रूपा हैं। महासरस्वती सात्त्विकी एवं सामवेद रूपा हैं। श्रीचण्डी प्रारम्भ में प्रणवरूपा वेद-माता गायत्री छन्द के रूप में आविर्भूत हैं। गायत्री प्रातःकाल में ऋग्वेदधारिणी कुमारी हैं, मध्यान्ह काल में यजुर्वेदधारिणी युवती हैं एवं सायं काल में सामवेदधारिणी वृद्धा हैं। कुमारी जैसे महाकाली, ब्रह्मरूपा ब्राह्मी। युवती जैसे महालक्ष्मी विष्णुरूपा वैष्णवी हैं। वृद्धा जैसे महासरस्वती शिवरूपा महेश्वरी हैं। उसी प्रकार श्रीमाँ का दक्षिणेश्वर पूर्व का जीवन, तत्पश्चात् काशीपुर तक का जीवन एवं उसके बाद का जीवन-काल उपरोक्त तीन लीलाओं के रूप में ग्राह्य है। यह साधकों का ध्येय विषय है। अन्त में सर्व उपनिषदसार श्रीमद्भगवद्गीता का उल्लेख भी इस प्रसंग में विधेय है। गीता में भी तीन भाग में, हर छह अध्याय में कर्म, भक्ति और ज्ञान का विवेचन किया गया है। 'तत्त्वमसि' महावाक्य का ज्ञान भी उसी गीता के तीन भाग में त्वं पदार्थ, तत् पदार्थ तथा उसको अभेद दर्शाया गया है। उसी प्रकार श्रीमाँ

के लीला-चिन्तन-स्मरण में भी वैसे ही फल-प्राप्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है –

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः।।[२३]

एक कॉलेज का छात्र प्राय: श्रीमाँ के पास उद्बोधन में आता-जाता था। एक दिन माँ से विदा लेते समय अचानक उसने कहा, ''माँ, मैं यहाँ के योग्य नहीं हूँ, मैं आपके पास आने के योग्य नहीं हूँ। मैं हमेशा के लिए विदा ले रहा हूँ।'' माँ ने उसकी आँखों में आँखें डालकर उससे दृढ़ स्वर में कहा, ''जब भी तुम्हारे मन में कोई बुरे विचार आएँ, तो मुझे याद करना, मेरा चिन्तन करना। चिन्ता मत करो।'' घर जाते समय लड़के ने माँ के शब्दों को बार-बार दोहराया – 'मेरे बारे में सोचो, मेरे बारे में सोचो, मेरे बारे में सोचो।' वह माँ की उन दो करुणामयी आँखों को नहीं भूल पाया। वैसे ही हम लोगों को भी जीवन के अपार सागर में तैरते हुए सर्वदा श्रीमाँ की उन आँखों और उनकी वाणी को याद रखनी चाहिये।

माँ बेटे का है इस जग में, बड़ा ही निर्मल नाता। पूत-कपूत सुने हैं पर, न माता सुनी कुमाता।। ○○○ (समाप्त)

सहायक ग्रन्थ – ११. वैकृतिक रहस्य २५ **१२.** श्रीदुर्गासप्तशती,११.१० **१३.** श्रीदुर्गासप्तशती, ११.५५ **१४.** श्रीदुर्गासप्तशती, १२.३६ **१५.** महेश्वर खण्ड में कुमारिका खण्ड, ६५.१२७ **१६.** श्रीदुर्गासप्तशती, १२.३७ **१७.** कूर्मपुराण, १२.२४९-२५० **१८.** अपराध क्षमापन स्तोत्र,४ **१९.** श्रीत्रिपुरारहस्य, ज्ञानखण्ड, २०.४०-४१ **२०.** मूर्तिरहस्य, २३ **२१.** बृहननली तंत्र,५ **२२.** श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६.८ **२३.** श्रीमद्भगवद्गीता, १८.७७

पृष्ठ २० का शेष भाग

रही थीं। ''हाँ, भागो और कहीं दूसरे स्थान पर खेलो।'' बूढ़े ने सन्तुष्ट होकर सिर हिलाया। ''सुरक्षित रहो बच्चो... यहाँ से बहुत दूर चले जाओ... । ''

वे तब तक दौड़ते रहे जब तक सप्तपर्णी से दूर गली के कोने तक नहीं पहुँचे। ''नरेन कहाँ है?'' किसी ने पूछा और शिबू ने झट से इधर-उधर देखा। ''वह यहाँ नहीं है,'' एक और लड़का हाँफता हुआ बोला, ''क्या तुमको लगता है कि भूत ने उसे पकड़ लिया है?'' ''मैं वापस जा रहा हूँ।'' शिबू ने कहा। हम तुम्हारे साथ आएँगे।'' अन्य लोग एक-दूसरे का हाथ कसकर पकड़े हुए, बहादुर होने की कोशिश कर रहे थे।

वे डरे और सहमे हुए वापस गये । उनके मन में यह भय था कि उनको यह देखने को मिलेगा कि नरेन के गले पर प्रेत के नुकीले पंजें होंगे। इसके बदले वे डर से नहीं, बल्कि राहत और खुशी से हाँफने लगे। अपने पैरों को एक शाखा के चारों ओर लगाए, नरेन उलटा लटक रहा था और हिलती हुए पत्तियाँ उसका साथ दे रही थीं। शिबू उसके पास दौड़ा और चिल्लाया, ''भगवान का शुक्र है कि तुम ठीक हो... हम बहुत चिन्तित थे!''

नरेन्द्र जोर से झूलकर कलाबाजी दिखाते हुए फुर्ती से जमीन पर कूदा, लड़के निर्भय होकर उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए। ''तुम सब बहुत मूर्ख हो,'' उसने टिप्पणी की, उसकी आँखें टिमटिमा रही थीं। ''अगर इस पेड़ पर सच में भूत होता, तो हमारी गर्दन तो बहुत पहले ही मरोड़ दिया होता... ।''

बूढ़े ने आह भरी। लड़के वापस आ गये थे, हल्ला और धूम मचा रहे थे। ''आह ठीक है, मैंने कोशिश की... और असफल रहा...'' और दो छोटी कपास की रूई लेकर, उन्होंने अपने कानों में भर लिया।

***

इसलिए केवल विश्वास न करो, क्योंकि कुछ प्राचीन हस्तलिखित पोथियों द्वारा बताया गया है, क्योंकि यह तुम्हारे पूर्वजों के द्वारा तुमको सौंपी गई है, क्योंकि तुम्हारे मित्र ऐसा चाहते हैं – अपितु स्वयं सोचो; अपने लिए सत्य खोजो; इसे स्वयं समझो। फिर यदि ऐसा लगे कि यह दूसरों के लिए लाभकारी है, तो इसे लोगों को बताओ। कोमल मस्तिष्कवाला व्यक्ति, दुर्बल हृदयवाला व्यक्ति सत्य नहीं पा सकता। व्यक्ति को स्वतन्त्र होना चाहिए और आकाश जितना विस्तृत होना चाहिए। व्यक्ति के पास शुद्ध और स्वच्छ मस्तिष्क होना चाहिए; तभी उसमें सत्य प्रकट हो सकता है। – स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द : युवा युगद्रष्टा

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा उसकी युवा पीढ़ी में ही प्रतिष्ठित होती है। समाज की प्रगति, संस्कृति की स्थिरता तथा राष्ट्र की गरिमा का मूल आधार यदि कोई है, तो वह है – उसकी युवा शक्ति। युवावस्था किसी भी जीवन की वह स्वर्णिम अवस्था है, जहाँ ऊर्जा, उत्साह, कल्पना, संकल्प और सृजनशीलता अपने चरम पर होती है। परन्तु यदि इस ऊर्जा का उचित दिशा में मार्गदर्शन न हो, तो वही शक्ति विनाश का कारण भी बन सकती है। भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान अभूतपूर्व है। उन्होंने युवाओं को आत्मबोध, आत्मबल और आत्मसंयम का ऐसा अमूल्य सन्देश दिया, जो आज के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक प्रासंगिक हो उठा है। युवा शक्ति किसी भी राष्ट्र की रीढ़ होती है। उसकी सामर्थ्य, उसकी चेतना एवं उसका विवेक ही किसी देश के भविष्य का निर्धारण करते हैं। वर्तमान युग में स्वामी विवेकानन्द का जीवन और उनके विचार युवाओं हेतु एक दीपशिखा के समान पथप्रदर्शक हैं।

स्वामी विवेकानन्द की युवाओं के प्रति दृष्टि

स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं को केवल शक्ति, साहस और आत्मबल का प्रतीक ही नहीं, अपितु राष्ट्र की आत्मा का वाहक माना। आज के तकनीकी युग में, जब युवा कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल संजाल और वैश्विक सम्पर्क से जुड़ा है, तब भी उसके सम्मुख अनेक विकट समस्याएँ उपस्थित हैं। स्वामीजी की दृष्टि में युवा वह है, जो आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो, भय से मुक्त हो और किसी उच्चतम आदर्श के लिए जीवन अर्पित कर सके। वे केवल भौतिक दक्षता नहीं, अपितु चारित्रिक तेज, आत्मबल, सेवा और त्याग को युवा जीवन का मूलाधार मानते थे। उन्होंने युवाओं से आग्रह किया कि वे स्वार्थ से ऊपर उठें, समाज के निर्माता बनें और आत्मबोध के पथ पर अग्रसर हों। उनके अनुसार युवा को शारीरिक रूप से सबल, मानसिक रूप से स्वतंत्र, नैतिक रूप से दृढ़ और आध्यात्मिक रूप से जाग्रत होना चाहिए। आज के युग में, जब लक्ष्यहीनता, मानसिक तनाव, मूल्यविहीनता, और सामाजिक दायित्वों से विमुखता जैसी चुनौतियाँ हैं, तब स्वामी विवेकानन्द तीन अमूल्य मन्त्र प्रदान करते हैं – चरित्र-निर्माण, निष्काम सेवा, और आत्मविश्वास। उनका विश्वास था कि यदि युवा अपने भीतर की अपार शक्ति को पहचानकर समाजोत्थान के लिए समर्पित हो जाए, तो राष्ट्र नवजीवन प्राप्त कर सकता है।

युवाओं की सशक्त भूमिका

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार राष्ट्र की उन्नति का मूल आधार चरित्रवान युवा हैं। उन्होंने युवाओं से केवल रोजगार की प्राप्ति नहीं, अपितु समाज के प्रत्येक क्षेत्र – जैसे ग्रामविकास, पर्यावरण, शिक्षा, चिकित्सा, स्त्री-शिक्षा, निर्धनता-निवारण व सांस्कृतिक जागरण में सक्रिय योगदान की अपेक्षा की। वे मानते थे कि जब युवा सत्य, सेवा, साहस और संकल्प से युक्त होंगे, तभी वे न केवल स्वयं का जीवन श्रेष्ठ बना सकेंगे, अपितु समाज को भी नई दिशा दे सकेंगे। यदि राष्ट्र को सशक्त और सांस्कृतिक रूप से जाग्रत बनाना है, तो युवाओं को चरित्रवान, जागरूक और सेवा-भावना से युक्त बनाना अनिवार्य है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, पवित्र, निर्भीक और ऊर्जावान युवा अनेक साधारण जनों से अधिक प्रभावशाली होता है। आज भारत को ऐसे युवाओं की आवश्यकता है, जो शिक्षा को आत्मविकास का साधन मानें, नैतिकता के पथ पर चलें, सफलता को समाजसेवा में बदलें और राष्ट्र के लिए जीवन अर्पित करने को तैयार हों।

आत्मविश्वास और भारतीय अस्मिता का उद्घोष – १८९३ में शिकागो धर्म संसद में 'Sisters and Brothers of America' के सम्बोधन से स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय

अस्मिता को विश्वपटल पर पुन: प्रतिष्ठित किया और वे विश्व मंच पर भारत के विचारों के प्रतिनिधि बने।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य – आज का युवा आत्मग्लानि से ग्रसित हो चुका है। पाश्चात्य चमक-दमक के बीच वह अपनी जड़ों को भूलता जा रहा है। स्वामी विवेकानन्द की यह घटना हमें सिखाती है कि सांस्कृतिक अस्मिता, आत्मविश्वास और संवाद-कौशल, इन तीनों को आत्मसात कर युवा न केवल भारत का प्रतिनिधित्व कर सकता है, बल्कि उसे नेतृत्व भी दे सकता है।

'दरिद्र नारायण' की सेवा का आदर्श – राष्ट्रनिर्माण में योगदान

स्वदेश लौटने के बाद स्वामी विवेकानन्द ने कहा – 'भारत की गरीबी, अशिक्षा और पतन का एक ही समाधान है – सेवा। दरिद्र ही नारायण हैं और उनकी सेवा ही सच्ची सेवा है।' उन्होंने युवाओं से आह्वान किया कि वे अपनी सुख-सुविधा से ऊपर उठकर समाज के पिछड़े, दलित, शोषित वर्गों की सेवा करें। यही भारत की आत्मा को जाग्रत करने का मार्ग है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य – आज भारत का युवा यदि स्टार्टअप्स, तकनीकी विकास और ग्लोबल अवसरों में आगे बढ़ रहा है, तो उसके साथ यह भी अनिवार्य है कि वह समाज की जड़ों से जुड़ा रहे। स्वामी विवेकानन्द की यह प्रेरणा युवाओं को सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिकता और करुणा के साथ राष्ट्रनिर्माण की ओर प्रेरित करती है।

युवाओं को उद्दीपन – 'Be strong, my young friends' – स्वामी विवेकानन्द का युवाओं के प्रति अत्यन्त प्रेम था। उन्होंने कहा – 'मुझे सौ ऐसे युवा चाहिए, जो अग्नि के समान हों, जो समाज के अन्याय, अज्ञान और कुरीतियों को भस्म कर सकें।'

आधुनिक परिप्रेक्ष्य – आज के युवाओं को विवेकानन्द की यह प्रेरणा शक्ति देती है कि वे केवल नौकरी या परीक्षा की दौड़ में न उलझें, बल्कि चरित्र, सेवा, नेतृत्व और आत्मज्ञान के पथ पर भी अग्रसर हों। युवाओं को यह समझना चाहिए कि वे केवल अपने लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र के भविष्य के लिए उत्तरदायी हैं।

बेलूड़ मठ की स्थापना – संगठन और शिक्षा की नींव

स्वामी विवेकानन्द ने केवल उपदेश नहीं दिया, बल्कि रामकृष्ण मिशन जैसी एक संगठित संस्था की स्थापना की जो आज भी समाज सेवा, शिक्षा और आध्यात्मिक जागरण में अग्रणी है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य – यह घटना युवाओं को यह सिखाती है कि आदर्श तभी पूर्ण होता है जब वह व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित हो। आज का युवा केवल विचारक नहीं, बल्कि सक्रिय नायक भी हो। समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए संस्थागत रूप से जुड़ना और कार्य करना अति आवश्यक है।

एक ऐतिहासिक घटना : मद्रास का आह्वान

सन् १८९७ में, अमेरिका से भारत लौटने के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास (वर्तमान चेन्नई) में युवाओं को सम्बोधित करते हुए कहा – क्या तुम भारत को भगवान के रूप में नहीं देख सकते? वह जो भूखा है, नंगा है, अशिक्षित है, उसी में मैं ईश्वर को देखता हूँ। अपने देशवासियों की सेवा करना ही परम धर्म है। यह उद्घोष केवल दया या करुणा की बात नहीं थी, अपितु यह युवाओं के भीतर एक प्रकार के कर्मयोग, राष्ट्रसेवा और लोकमंगल की भावना को जाग्रत करने का आह्वान था, जो हर युवा के हृदय में शक्ति, आत्मबल और कर्तव्यबोध का संचार करता है।

उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द का जीवन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि आज के भारतीय युवाओं के लिए अत्यन्त प्रेरणास्पद भी है। आज के युवक यदि स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों को अपनाएँ, तो वे न केवल स्वयं की उन्नति कर सकते हैं, अपितु राष्ट्र के पुनर्निर्माण में भी अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। आधुनिक भारत के युवा को चाहिए कि वह अपनी जड़ों से जुड़ा रहे, आत्मविश्वास से भरपूर हो, राष्ट्रहित को सर्वोपरि माने, चरित्र, संयम और सेवा को जीवन का आधार बनाए। स्वामी विवेकानन्द का दर्शन हमें यह सिखाता है कि भारतीयता केवल एक परिधान या भाषा नहीं, यह एक दृष्टिकोण है, जिसमें समन्वय एवं समरसता का समावेश है। स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे महामानव थे, जो युवाओं के लिए आज भी प्रेरणा हैं। उनकी ओजस्वी वाणी में जो शक्ति है, वह शताब्दियों तक भारत की युवा आत्मा को जागृत करती रहेगी। ○○○

धवल नर्मदा

डॉ. राघवेन्द्र गुमास्ता, भोपाल

नर्मदा चैतन्यमयी हैं, चैतन्यप्रदात्री हैं, चैतन्यमूर्ति हैं एवं चेतना चैतन्यकारी हैं। नर्मदा का किनारा ही ऐसा किनारा है, जहाँ सिद्ध स्थान ढूँढना नहीं पड़ता है, यहाँ हर स्थान सिद्ध है, सिद्धि प्रदाता है। कहीं भी बैठ जाओ। यहाँ तो बारामासी सिंहस्थ है। मुहूर्त देखने की कोई आवश्यकता नहीं। सभी शुभ कार्य सब समय शुभ हैं यहाँ। नर्मदा किनारे सब शुभ ही तो है। शुभ नाम, शुभ धाम, शुभ विश्राम। अखिल विरुद्ध धर्माश्रयी तो ईश्वर ही हैं एवं इनका उज्ज्वल प्रकाश नर्मदा तट पर है। नर्मदा तट सदैव प्रकाशित है, कोई अन्धकार नहीं। यहाँ अमावस की रात भी उजाली है। शिव जहाँ प्रकट रूप व्याप्त हों, वहाँ अँधेरा कैसा! शिव ही प्रकाश हैं, शिव ही प्रकाशित हैं यहाँ। नर्मदा को अमरता का महादेव प्रदत्त वरदान प्राप्त है। तभी तो वे न मृता हैं, स्वपथगामिनी हैं, अनुगम्या हैं, अनेकानेक प्रणम्य हैं, कलिमलविनाशक हैं, महापातकोषधि हैं। सर्प, देवता, गन्धर्व, यक्ष, ग्रह; सभी हाथ बाँधे खड़े हैं। नर्मदाजी की जिस पर कृपा हो, उस पर सब तुरन्त अनुकूल हो जाते हैं।

भरी ठण्ड में नर्मदा किनारे चलते, रुकते, फिर चल पड़ते, रुके से चलते, चलते से रुके परिक्रमावासियों की श्रद्धा को कौन जान सकता है, बिना परिक्रमा किये। वे रुके होते हुये भी चलते क्यों दिखते हैं। जब वे रुके होते हैं, तब भी तो वे अनथक, अविश्राम, अपार विचारों से सराबोर चलते ही रहते हैं। कभी-कभी वे चलते से रुके क्यों दिखते हैं। वे परिक्रमा में सदैव रहना चाहते हैं। इससे बढ़कर कोई सुख नहीं। सो चलते अवश्य हैं, किन्तु वे चलते कहाँ हैं, वे तो सदैव नर्मदा किनारे रुक ही तो गए हैं। नर्मदेश्वर की नर्मदा कहें या नर्मदा के नमर्देश्वर। वे भक्त हैं, शिव एवं मेकलसुता के। जिसके शिव हुए, उसका अभाव कहाँ रहा। जो भाव में हुआ, उसमें अभाव कहाँ रहा। कैसा सुन्दर भाव है, शिव का ! है कहाँ अभाव, शिव भाव होते।

उग्र, शान्त, सम सभी रूपों में बहती नर्मदा जाने कितनी उग्रताओं को शान्त अथवा सम करती चलती हैं, क्या गणना की जा सकती है। कौन करेगा, कैसे करेगा, कब करेगा, क्या कर सकेगा कभी? नर्मदा बताती नहीं हैं, वे तो बस कृपा करती ही जाती हैं। उनकी कृपा सीमित भी नहीं संख्या या प्रभाव में। यह तो बहते जल में बहती कृपा है। पात्र जैसा होगा, वैसी होगी कृपा, उतनी होगी कृपा। अभी भी चूके, कृपा बटोरने से, तो समझो तुम चुक गए। भँवर जल हो या भ्रम-जाल; दोनों फिर एक ही हैं। डूबने के लिए मत उतरो, उतर कर डूब लो, ध्यान, ज्ञान, विज्ञान में। गहन चेतन की परमचेतनानुकम्पा-स्वरूपा नर्मदा में।

प्रलय काल में भी सदैव अनष्ट नर्मदा प्रवहमान हैं। नर्मदा-जलधार में अन्यत्र अबाधित प्रलय-तरंगे भी निस्तेज हैं। नर्मदा मगर पर सवार, द्रुत गति से स्वयं के मार्ग पर गतिशील हैं, रही हैं और रहेंगी। तो, ऐसी नर्मदा को कोई क्यों न भजे? तब ही तो आचार्य शंकर एक बार नहीं, बार-बार कहते हैं, प्रसन्नचित होकर, नाचकर, गाकर कहते हैं – नमामि देवि नर्मदे, नमामि देवि नर्मदे। नमामि शब्द का प्रयोग मानस, धार्मिक ग्रन्थों एवं श्रुतियों में उसी समय किया गया है, जब प्रार्थना कातर होकर की गई है एवं अविलम्ब सुनी गयी है। चाहे वह नमामि देवि नर्मदे हो, नमामीशमीशान-निर्वाणरूपम् हो या हो नमामि भक्तवत्सलम् कृपालु शील कोमलं। नमामि शब्द स्वसिद्ध है। नमामि बोलते ही देव, ईश्वर एवं सभी श्रेष्ठ शक्तियाँ अपने जागृततम प्रभाव युक्त हो प्रगट हो जाती हैं।

नर्मदा पुरानी नहीं, वे तो चिर नवीन हैं, जनमुखस्थ रामकथा की तरह। राम की कथा निरन्तर है। कल भी थी, आज भी है, भविष्य में भी रहेगी। जो अनन्त नहीं, वह

शेष भाग पृष्ठ ३८ पर

तो क्या सत्य का त्याग कर दें?

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे।)

साधक-साधिका को शुद्ध बुद्धि रखनी चाहिए और 'आत्मानं नियम्य च' – धैर्यपूर्वक मन को नियन्त्रण में लाना चाहिए। यह कृपा-विशेष की बात है। इसे अत्यन्त धैर्य से करना चाहिये। क्योंकि मन मानने को तैयार नहीं होता है। एक सज्जन मुझे अभी बीस दिन पहले कह रहे थे – अरे महाराज, पैंतीस साल पहले दीक्षा लिया। पैंतीस साल से जप कर रहा हूँ। किन्तु कुछ नहीं हुआ। मैंने कहा – पैंतीस साल से आप नियमित जप कर रहे हैं, यह बहुत बड़ी बात है। बहुत बड़ा आपका व्यवसाय है। लगभग पैंतालीस या पचास वर्ष से तो आप यह व्यवसाय कर रहे हैं। अपने पिता के साथ पहले गद्दी में आये थे। लगभग छियालीस-सैंतालीस वर्ष हो गये। छियालीस-सैंतालीस वर्ष व्यवसाय करके आपको क्या मिला? वे हँसने लगे – महाराज, इतना रुपया-पैसा, धन-सम्पत्ति मिली। जब सब मिल गया, तो अब क्यों व्यवसाय करते हैं, क्या काम है? अरे महाराज, उसके बिना कैसे चलेगा? तुम इतनी सम्पत्ति कमा लिये हो, बहुत बड़े पॉश एरिया में मकान है, करोड़ों का व्यवसाय है। इतने वर्षों से व्यवसाय कर रहे हो, फिर भी मन में इच्छा रखते हो कि आगे पैंतालीस साल व्यवसाय करते रहेंगे? जब ऐसी कल्पना करके रखे हो, तब हिसाब नहीं लगाया और अब हिसाब लगाते हो कि पैंतीस साल तक जप किया और कुछ नहीं हुआ? मैंने कहा, यही हुआ। पैंतालीस साल तक तुमने जप किया, उसकी उपलब्धि तो कम से कम यह है कि तुम्हारे खाते में पैंतालीस साल तक जप करने की स्मृति और संस्कार हैं। यह लाभ मिला।

दूसरी बात, भगवान ने यह सद्बुद्धि तुमको दी कि अभी तुम करोड़ों के मालिक होकर भी एक फकीर बाबाजी के पास, जिनके पास दस पैसे भी नहीं हैं, कम से कम मिलने आये, बातचीत कर रहे हो, सत्संग कर रहे हो। नहीं तो, तुम कहीं अन्यत्र चले जाते, जो तुम्हें गर्त में गिराते। यह इसीलिए हुआ कि तुम पैंतीस साल से जप कर रहे हो। नहीं तो क्या होता? अगर जप न करते, तो तुम इतने अहंकारी हो जाते कि अपने से छोटे लोगों को कीड़े-मकोड़े की तरह समझते और जितने तुमसे बड़े लोग हैं, उन सबसे तुम ईर्ष्या करते। अहंकार और ईर्ष्या; दोनों से मनुष्य का पतन होता है।

अब देखिए, थोड़ा सा विचार करने से कितना अन्तर आ गया। तो यह हिसाब कभी नहीं लगाना चाहिए कि इतना साल जप करने से क्या लाभ हुआ? ऐसा नहीं हो सकता कि जप का प्रभाव न हो, भले ही हम उसे न समझें। यदि कुछ लाभ नहीं हुआ, तो क्या भगवान का नाम नहीं लेना चाहिए? विवेकानन्दजी से किसी ने पूछा – यदि कुछ लाभ नहीं हुआ, तो क्या सत्य का त्याग कर देना चाहिए? स्वामीजी ने कहा – ऐसा नहीं है। सत्य की उपलब्धि होने पर तुम्हारा स्वयं का जीवन सत्यमय हो जायेगा। आज मिथ्या के कारण जो कष्ट पा रहे हो, उन सबसे मुक्त हो जाओगे। मिथ्या के कारण ही तो सन्देह है। मिथ्या के कारण ही तो डर है। मिथ्या के कारण ही सब प्रकार का भय होता है। सत्य से कोई भय नहीं होता है।

मान लीजिये, मैं आपके घर गया। आपके ड्राइंगरूम में बैठा हूँ। वहाँ बहुत कीमती कलम पड़ी है। यदि उसे मैं जेब में रखकर निकलूँ, तो शरीर काँपने लगेगा। डर लगेगा कि कहीं किसी ने देख तो नहीं लिया! जहाँ छिपाना है, वहाँ भय लगेगा। किन्तु यदि सत्य है, तो सत्य से कोई भय नहीं रहेगा। आपके पास कलम है, मेरी इच्छा हुई। मैंने कहा यह कलम मुझे दे दीजिए। आपने कहा, अच्छा महाराज ले जाइये। तो कोई भय नहीं है। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में देखिये, सत्य से भय नहीं होता।

धैर्यपूर्वक अपने मन को वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए। शब्द आदि जो विषय हैं, इन विषयों का त्याग करना चाहिए। कैसे त्यागना चाहिए? अर्थात् इन्द्रियों से मिलनेवाले जो सुख हैं, इन सुखों के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए। यहाँ एक बात आप सबको स्मरण रखना है। प्रकृति के नियम से विषयों के भोग में दोष नहीं है, दोष है विषयों के चिन्तन में। हमारे ऋषियों ने मनुष्य-जीवन की जो आश्रम-व्यवस्था बनायी, उसमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम है। गृहस्थ जीवन को पचास वर्ष भोग करने के लिए दिये गये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जो चार पुरुषार्थ बताये गये हैं, उनमें अर्थ और काम भी पुरुषार्थ हैं, किन्तु वे धर्मसम्मत होने चाहिये। ○○○

भजन एवं कविता

वीर विवेकानन्द जगद्गुरु

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

वीर विवेकानन्द जगद्गुरु, ज्ञानमूर्ति तुम अति गुणवान ।
योगिश्रेष्ठ तुम त्रितापहारी, तुम रत सदा ब्रह्मसन्धान ।।
सत्यनिष्ठ तुम परम विवेकी, धर्मतत्त्व के तुम आख्यान ।
दुखित जनों के दुख को हरते, देते उन्हें ईश का मान ।।
कमलनयन सत्कर्म विधायक, शिवस्वरूप तुम प्रकाशवान ।
तिमिरविनाशक ज्ञानप्रदायक, कर्मशक्ति के तुम प्रतिमान ।।
परहितत्याग तुम्हारा वैभव, अनासक्ति के तुम पहचान ।
रामकृष्ण के परम शिष्य तुम, चाहूँ तव चरणों में स्थान ।।

माँ तार-तार झंकृत कर दो

रामबरन सिंह 'करुण'

माँ तार-तार झंकृत कर दो,
भर ज्ञान-सलिल पावन सर दो ।
ज्योति-निर्झर, हर-तिमिराच्छन्न,
नव-कृति के प्रति, रति हो क्षण-क्षण,
बन जाये, नव पथ नव अर्चन,
माँ विमल-ज्ञान, नवरस भर दो ।
प्रिय नवल छन्द की नव कलिका,
दर्शित हो भू पर नव मलिका,
नव रस-वर्षण, सुखद चन्द्रिका,
माँ जीवन को मधुमय स्वर दो ।
द्वेष-अन्ध के कटें बन्ध सब,
फूटें जन-मन से निर्झर तब,
समता की सरिता छोड़ो अब,
माँ स्नेह-बिन्दु प्लावित वर दो ।

विवेकानन्द की विश्वविजय

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

विश्वभ्रमण पर निकला जब वह, वीर विवेकी योगी ।
सारे जन स्तब्ध रह गये, जो थे भव-भय रोगी ।
रामकृष्ण का परम दुलारा, दृढ़प्रतिज्ञ वीतरागी ।
विश्वविजय का लेकर प्रण, वह चला सिंह वैरागी ।।
विश्वनाथ-भुवनेश्वरी आत्मज, भगवाधारी त्यागी ।
उसकी मोहकता के आगे, फीके सब बड़भागी ।।
भौतिकता के चकाचौंध में, जो दुनिया खोयी थी ।
तम-निद्रा के अंधकार में, जो अब तक सोयी थी ।।
उसे पिलाकर ज्ञानामृत वह, अमर बनाने वाला ।
वसुधाभर के नरपशुओं को राह दिखाने वाला ।।
क्या पूरब क्या पश्चिम वाले, सबको कर अनुरागी ।
लौटा जब वह मातृभूमि पर, इसकी किस्मत जागी।।
सबके नेत्र खुल गये अचानक, सबने जड़ता त्यागी ।
भारत माँ की मुक्ति की, शुभ लगन हिय में लागी ।।
जिनके मोहपाश में बँधकर, लोग पड़े थे अन्धे ।
क्षणभर में सब बन्द हो गये, उनके गोरखधन्धे।।
अकड़-ऐंठ सब धरी रह गयी, चली न कोई नीति ।
पड़ा भागना छोड़ सभी कुछ, ऐसी जागी भीति ।।
जगद्गुरु की पदवी फिर से, आर्यभूमि ने पाई ।
सारी धरती पर फिर से, वेदान्त ध्वजा लहराई।।

जयति शारदे !

श्रीधर प्रसाद द्विवेदी, डाल्टनगंज, झारखण्ड

कुसुमोपम कुन्द समान लसे,
कुमुदी पट वेष्टित श्वेत भली ।
कमलासन शोभित पूर्णकला,
शशिकान्ति मनोहर कुन्द कली ।।
हर अक्ष सुमाल लिये कर में,
मणिमाल गले विलसी अवली ।
शुचि शारद-मात बिना मति में,
नव ज्ञान प्रकाश खिली न मिली ।।

निडर और धैर्यशाली स्वामी सारदानन्द

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

आज हम स्वामी सारदानन्द जी महाराज के जीवन और संदेश के विषय में जानेंगे। उनका जन्म २६ दिसम्बर, १८६५ को कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री गिरीशचन्द्र चक्रवर्ती और माता का नाम श्रीमती नीलमणी चक्रवर्ती था। सारदानन्द जी महाराज का पूर्व का नाम शरत्चन्द्र चक्रवर्ती था। वे बचपन से ही सेवाकार्य में रुचि रखते थे। १८८३ में उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव का प्रथम दर्शन किया। कुछ वर्षों के बाद उनका संन्यास हुआ और उनका नाम शरत्चन्द्र से स्वामी सारदानन्द हो गया।

जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटकर भारत में रामकृष्ण मिशन की स्थापना करते हैं, तब उन्होंने स्वामी सारदानन्द जी को महासचिव का उत्तरदायित्व दिया। अपनी सहिष्णुता, तितिक्षा, गम्भीरता, धैर्य इन सब गुणों के कारण वे रामकृष्ण मठ और मिशन को उच्च शिखर पर ले गये। वे निराभिमानी, निडर और आत्मसंयमी थे।

एक बार वे समुद्री जहाज से इंग्लैण्ड जा रहे थे। समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। उसमें बैठे यात्री भयभीत होने लगे। जहाज डूबने के डर से सभी लोग इधर-उधर भागने लगे। लेकिन स्वामी सारदानन्द जी शान्त बैठे थे, सभी आश्चर्यचकित थे कि यह व्यक्ति इतना शान्त क्यों बैठा है? इसमें कितना धैर्य है!

एक बार कलकत्ता से डॉ. काँजीलाल के साथ नाव में बैठकर वे बेलूड़ मठ आ रहे थे। जैसे ही नाव में बैठकर चले, तो गंगा नदी में तूफान आ गया। लगा कि नाव डूबने वाली है। सभी लोग भयभीत हो गये। किन्तु सारदानन्द जी महाराज शान्ति से बैठे रहे। डॉ. काँजीलाल बोले, 'तुम कैसे व्यक्ति हो? लोग मरने जा रहे हैं और तुम शान्ति से बैठे हो!' यह कहते हुये वे उन्हें डाँटने लगे। उनकी बातें सुनकर सारदानन्द जी महाराज ने कहा – 'तो क्या करूँ? डूबने से पहले ही गंगा में छलांग लगा दूँ।' जब तक कोई घटना अन्तिम अवस्था तक न पहुँचे, तब तक व्यक्ति को विचलित नहीं होना चाहिए। थोड़ी देर बाद तूफान शान्त हो गया। इस घटना से हमें जीवन में धैर्य रखने की शिक्षा मिलती है।

इसी प्रकार आत्मसंयम की एक दूसरी घटना हमें उनके जीवन में देखने को मिलती है। आत्मसंयम का अर्थ होता है – अपने ऊपर नियन्त्रण करना। एक बार एक रसोइया मन्दिर में गया। उसके पैर में कीचड़ लगा था। वह पैर धोये बिना ही मन्दिर में चला गया। जब मन्दिर में उन्होंने पैर का चिह्न देखा, तो उन्हें बहुत क्रोध आया। सभी ने सोचा आज उस रसोइया पर महाराज बहुत क्रोध करेंगे। उसको बहुत डाटेंगे। लेकिन जब वह सामने आया, तो उन्होंने उसे जाने को कह दिया। उन्हें क्रोध तो आया, पर उसे प्रगट नहीं किया। क्योंकि उनका मानना था कि किसी भी व्यक्ति में दोष हो सकते हैं, कोई भी पूर्ण नहीं हैं। हमें किसी का भी दोष नहीं देखना चाहिए। वे कहते थे – मैं किसी स्कूल का हेडमास्टर नहीं हूँ कि छड़ी उठाकर बच्चे कहाँ घूम रहे हैं, उन्हें देखता रहूँ। तुम इतने बड़े हो गये हो कि तुम्हें अपनी आयु के अनुसार अपनी स्थिति को समझ लेना चाहिए।

आजकल हम देखते हैं कि विद्यार्थी परीक्षा में असफल होने पर गलत मार्ग पर चलकर अपने और अपने परिवार की बड़ी क्षति करते हैं। बच्चों और युवाओं में धैर्य की अत्यधिक कमी देखी जा रही है। आजकल के छोटे बच्चे या युवा बात-बात पर क्रोध करते हैं, बड़े लोगों की बात को न सुनना चाहते हैं, न समझना चाहते हैं। यह हमारे लिए ठीक नहीं है। जीवन में संयम और धैर्य रखने से हम सफल हो सकते हैं। इसके लिए हमें निरन्तर प्रयास करना चाहिये।

बच्चों और युवाओं को स्वामी सारदानन्द जी महाराज के जीवन से बहुत कुछ सीखने को मिलता है, जिसमें धैर्य और आत्मसंयम प्रमुख हैं। हम भी अपने जीवन में इन गुणों को आत्मसात् करने का संकल्प लें। ○○○

स्वामी विवेकानन्द वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(मत्तगयंद छन्द)

(को नहीं जानत है जग में कपि संकटमोचन नाम तिहारो)

ये किनको लाये हो, निज संग हे ठाकुर!

जिनकी सुन्दरता पर मन बलिहारी। (टेक)

देह सबल, मन-बुद्धि प्रखर, रूपाकर्षण अति नयनाभिरामा ।
विश्वविजय करके भी भारत, हेतु रुदन करते अविरामा ।
श्रीगुरु-चरणों में शरणागत, कौन ये भारतवर्ष-पुजारी ।
ये किनको लाये हो, निज संग हे ठाकुर! जिनकी...।।१।।
ध्यान परायण कौन ये ऋषिवर, ज्ञान-विवेक-विराग-निधाना।
नर-नारायण की ही सेवा, का करते रहते जयगाना ।।
जिनके परदुखकातर अन्तर, पर ही जन-गण-मन बलिहारी ।।२।।
कौन हैं ये तव शीश-मुकुटमणि, निर्भयता शुभमन्त्र प्रचारी ।
भारत के प्राणों की वीणा, का स्वर फैलाते अविकारी ।।
स्वार्थरहित पर-सेवा को ही, जो कहते अध्यात्म पुकारी ।।३।।
लेते हैं बारम्बार परीक्षा, फिर तुमको ही कहते अवतारवरिष्ठा।
तव श्रीचरणों में अविचल निष्ठा से, करते अद्वैत वेदान्त प्रतिष्ठा।।
कौन हैं ये नरश्रेष्ठ अतुल बल, संयम में, जिनसे है माया भी हारी ।।४।।
भारतवर्ष के जनगणनायक, भारत माता के श्रेष्ठ पुजारी ।
निज वचनों-संदेशों से ही, जो जन-गण-मन हृदय-विहारी।।
कौन हैं ये, जिनके नाम को सुनकर, मन हो सरल, सबल अविकारी ।।५।।
परिव्राजक बन भारतवर्ष की, उन्नति के अद्‌भुत व्रत-धारी ।
पूर्ण जितेन्द्रिय, त्यागव्रती, मन-कर्म वचन से भी अविकारी ।।
कौन हैं ये ऋषि, भारत के ध्यान में, बैठे शिला पर कन्याकुमारी।।६।।
ध्यानसमाधि के दुर्लभ सुख को भी, छोड़ सहज उन्मुक्त विहारी।
राजा से लेकर रंक, सभी के ही, घर जाते बनकर पदचारी ।।
कौन हैं ये, जिनको हे ठाकुर! देख तुम्हें होता सुख भारी।।७।।
मानव के भीतर की दिव्यता, प्रकटन का देते सन्देशा ।
उठो, उठो, अब जागो मानव! तुम सब दिव्य अंश परमेशा ।।
कौन है ये चिर तरुण ! सप्त ऋषि मंडल के ऋषिवर अवतारी।।८।।
धर्म सनातन 'कीर्ति-ध्वजा की' गौरव-वृद्धि के चिर अभिलाषी।
मुखमंडल की अनुपम छवि को, देख कटे भवबन्धन-फाँसी।।
कौन ये अनुपम-अतुलित प्रतिभा, जिनके चरित की महिमा न्यारी ।।९।।
तर्क-विवेक-विचार भरा मन, परदुखकातर हृदय उदारा ।
मानव चिरकल्याण हेतु दृढ़-संकल्पित भी अपरम्पारा ।।
कौन हैं ये, जिनको तुम कहते, ईश्वर कोटि पुरुष अवतारी ।।१०।।
नर सेवा-नारायण सेवा-व्रत से, त्यागव्रती सविशेषा ।
हम सब ऋषियों की संतानें, जिनका एक यही संदेशा ।।
कौन हैं ये जन-मन उन्नायक, मानव-दुर्बलता-अपहारी ।।११।।
ध्यानपरायण मुखमंडल की, शोभा सब भव-बन्धन-हारी ।
उद्‌बोधक वचनों को सुनकर, सहज दूर हो जड़ता सारी ।।
कौन हैं ये इस धरती-तल पर, अनुपम निजगुरु-आज्ञाकारी।।१२।।
अद्‌भुत-अतुलित शौर्य-पराक्रम, अतुल सबल मन प्रतिभाशाली ।
परम पवित्र-चरित्र के बल पर, विश्वविदित यश-वैभवशाली ।।
कौन हैं ये युगनायक, जग-वैभव निर्लिप्त, विवेक-विहारी।।१३।।
देह सबल, 'मन-बुद्धिहृदय की', निर्मलता के अधिपति-स्वामी।
मानवता-शुभमार्ग प्रदर्शक, होकर भी तव पद-अनुगामी।।
कौन हैं ये, चिरतरुण तपस्या-तत्परता-व्रत के संचारी ।।१४।।
उठो, उठो, हे मानव जागो, वीर समान बनो बलशाली।
तुम जड़ या पशु-तुल्य नहीं, तुम देव सदृश यश-वैभवशाली।।
कौन हैं ये चैतन्यप्रदायक, जड़ता-रजनी-तम-अपहारी ।।१५।।
मुखमंडल पर दिव्य भाव, मन भी प्रशान्त, अन्तर अविकारी ।
वचन-सुधा जग-मार्गप्रदर्शक, कर्मोद्यम-पथ की सहचारी ।।
कौन हैं ये वेदान्त प्रचारक, कर्मठता-शुभमन्त्र-प्रचारी ।।१६।।
भारत की उन्नति-वैभव के, चिर अभिलाषी किन्तु विरागी ।
अद्‌भुत आध्यात्मिक सम्पद के, जन-जन-वितरण के अनुरागी।
कौन हैं ये ऋषिवर, हे नरवर! जो हैं तव लीला-सहचारी ।।१७।।
ज्ञान से कर्म, वेदान्त से भक्ति के, भावसमन्वयकर्ता, स्वामी।
अतुलित, दिव्य, चैतन्यप्रदायक, वाणी सुन मन हो अनुगामी।।
कौन हैं ये पुरुषोत्तम जो, जन-मन में बल-साहस-संचारी।।१८।।
मानव के निर्मल चरित्र की, शिक्षा ही उपदेश उदारा ।
प्रबल आत्मविश्वास-जागरण का ही करें सबल हुंकारा।।
कौन हैं ये जो सच्ची शिक्षा, से चरित्र-बल के संचारी ।।१९।।
नैतिक-सामाजिक अनुशासन, ही समाज का मूलाधारा।
धर्म सनातन से मानव, दिव्यता-प्राप्ति आदर्श हमारा ।
धराधाम पर फिर आए, ये कौन महेश-अंश-अवतारी ।।२०।।
बल साहस से ही स्वधर्म पर, चलने के अद्‌भुत व्रतधारी ।
सेवाधर्म प्रचारक, मानव मन, समस्त दुर्बलता-हारी ।
कौन हैं ये जो भारत के, जनगण में बल-साहस-संचारी।।२१।।
दुर्बलता ही घोर पाप है, बलवत्ता सद्‌धर्म हमेशा ।
बस निर्मल चरित्र से ही, प्राप्तव्य मनुष्य लक्ष्य सविशेषा ।
कौन हैं ये आचार्यप्रवर जो, बल-विवेक साहस-संचारी ।।२२।।
ये किनको लाये हो, निज संग हे ठाकुर!
जिनकी सुन्दरता पर मन बलिहारी ।। (टेक) ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (५४)

(द्वादश अध्याय १२/२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

विजातीयः पशुः कश्चिद् यदि विशति गोव्रजे।
तं ताडयन्ति ते सर्वे श्रृंगैराक्रम्य धेनवः।।१३।।

– गोशाला में यदि अन्य कोई पशु चला आता है, तो सभी गायें उसे सींग से मारकर बाहर निकाल देती हैं।

तत्र तु गोवि कस्मिंश्चिद् गोयूथमध्यमागते।
गावः सर्वे मिलित्वा तं कुर्वन्ति ह्यवलेहनम्।।१४।।

– किन्तु उसी गौशाला में किसी गाय के आने पर सभी गायें मिलकर उसके शरीर को चाटने लगती हैं।

तद्वन्मिलन्ति भक्ताश्च भक्तैः सह यदा तदा।
नन्दन्ति ते लपन्तश्च धर्मकथाः परस्परम्।।१५।।
त्यक्तुं नेच्छन्ति तत्संगं ते कथमपि चाञ्जसा।
विजातीयानुपेक्षन्ति कांश्चित् तत्रागताञ्जनान्।।१६।।

– उसी प्रकार जब भक्त से भक्त मिलते हैं, तो दोनों ही धर्म-चर्चा करते हैं, अत्यन्त आनन्दित होते हैं, किसी प्रकार भी उनका संग छोड़ने की इच्छा नहीं होती। किन्तु किसी विजातीय के वहाँ आने पर उनसे नहीं मिलते, उनकी उपेक्षा करते हैं।

अल्पापवतस्तडागाद्वै जलं चेत् पातुमिच्छसि।
शीर्षभागान्न संक्षुभ्य स्तोकं स्तोकं गृहाण तत्।।१७।।
भृशं तत् क्षोभयेन्नैव चेदपि क्षोभितं कृतम्।
तलदेशान्मलोत्थानं सलिलं मलिनं भवेत्।।१८।।

– जिस तालाब में पानी कम रहता है और उसमें से यदि पानी पीना हो, तो ऊपर से पानी को बिना हिलाये धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा पीना पड़ता है। यदि उस पानी को अधिक हिलायेंगे, तो उसके भीतर तल से मैला आकर जल में घुलकर जल को गन्दा कर देता है।

तथा त्वं सच्चिदानन्दं लब्धुं तात यदीच्छसि।
गुरो विश्वासमास्थाय यत्नतः कुरु साधनम्।।१९।।

– उसी प्रकार हे तात! यदि तुम साधना करना चाहते हो, तो गुरु पर विश्वास रखकर यत्नपूर्वक धीरे-धीरे साधना करो।

मृषा विचारतर्केण मनस्तन्न विचालय।
क्षुद्रं यतो मनस्त्वेतदल्पेनापि विचाल्यते।।२०।।

– केवल शास्त्र-विचार के मिथ्या तर्क द्वारा मन को विचलित मत करो। क्योंकि क्षुद्र यह मन अल्प में ही विचलित हो जाता है।

भूतापसारणं तेन बीजेन स्यात् कथं वद।
येन त्वं सर्षपैनैव भूतं दूरी करिष्यसि।
तस्मिन् सर्षपगर्भे हि भूतः प्रविश्य तिष्ठति।।२१।।

– उस बीज से भूत कैसे छोड़ेगा, कहो तो? जिस सरसों से तुम भूत छुड़ाओगे, उस सरसों में ही तो भूत है।

साधनभजनादीनि यन्मनसा करिष्यसि।
तद्वै चेद्विषयासक्तं साधनं तु कथं भवेत्।।२२।।

– जिस मन से साधन-भजन करोगे, यदि वही विषयासक्त हो जाये, तो साधन-भजन कैसे होगा?

यथार्थं साधनं नाम मनमुखैकताकृतिः।
सर्वस्वं द्रविणं त्वं मे देवेति वदनैर्धृतम्।।२३।।
सर्वस्वं विषयं ज्ञात्वा मनसि परतः स्थितः।।
नृणां साधनमेतेषां सकलं विफलं भवेत्।।२४।।

– मन-मुख एक करना ही सच्ची साधना है। नहीं तो, मुख से कहते हैं – भगवान! तुम हमारे सर्वस्व धन हो और उधर मन में विषय को ही सब कुछ मान बैठे हैं। ऐसे लोगों की सभी साधना विफल हो जाती है।

वासनालेशमात्रं चेन्मनसि किल वर्तते।
नैवास्ति भगवत्प्राप्तेराशालेशं कदाचन।।२५।।

– मन में लेशमात्र वासना रहने से कभी भी भगवान की प्राप्ति की लेशमात्र भी आशा नहीं रहती है। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/६)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मनुष्य के अच्छे कर्मों से उसमें अच्छे संस्कारों का निर्माण

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।१६।।

सुकृतस्य कर्मण: (श्रेष्ठ कर्म का) सात्त्विकम् निर्मलम् फलम् आहु: (सात्त्विक निर्मल फल कहा गया है) तु रजस: फलम् दु:खम् (किन्तु राजसिक कर्म का फल दुख) तमस: फलम् अज्ञानम् (तामसिक कर्म का फल अज्ञान है)।

''श्रेष्ठ कर्म का सात्त्विक निर्मल फल कहा गया है, किन्तु राजसिक कर्म का फल दुख, तामसिक कर्म का फल अज्ञान है।''

यहाँ अचानक कर्म की बात ला दी। अभी तक गुणों की बात बता रहे थे। कहते हैं – **कर्मणः सुकृतस्याहुः** - सुकृत कर्म अर्थात् अच्छे कर्म। इन सुकृत या सात्त्विक कर्मों का फल निर्मल होता है। जो राजसिक कर्म होते हैं, उनका फल दु:ख होता है और तामसिक कर्मों का फल अज्ञान होता है। इसका मतलब क्या हुआ? यहाँ पर कहा गया है कि राजसिक कर्म का फल दु:ख और तामसिक कर्म का फल अज्ञान। दोनों में क्या अन्तर हुआ? राजसिक कर्मों के फल में दु:ख है, सुख बहुत थोड़ा ही होता है। ऐसा नहीं होता कि उसमें बिल्कुल न रहता हो, पर दु:ख का परिमाण ही अधिक होता है। जैसा कलकत्ते के मैदान में केवल टिकट खरीदने के लिए चालीस-चालीस घण्टे तक कतार में खड़े रहते हैं। उस कतार में ही सोते भी हैं। अब इतनी देर जो खड़े रहे उसे कष्ट तो होना ही है। दु:ख का अनुभव तो होता है, पर किसके लिए? वह जो एक घण्टा मैच देखेंगे उसके लिए। सुख तो अवश्य ही है, पर उसके अनुपात में दु:ख की मात्रा पर विचार कीजिए। तामसिक कर्मों में तो सुख बिल्कुल भी नहीं है, उसमें अज्ञान होता है। जैसे एक जानवर अपनी प्रवृत्ति से चलता है। जानवर को भी सुख तो है। पर वह प्रवृत्तियों का दास होता है। जैसे हम बुद्धि से सुख और दु:ख को जानते हैं, पर जानवर उस तरह नहीं जानता है। वह तो अपनी सहज प्रेरणा से जानता है। वह विवेचन या विवेक नहीं कर सकता। वह शक्ति उसके पास नहीं होती। यह शक्ति मनुष्य को ही प्रदान की गई है। इस तमोगुणी व्यक्ति के संस्कार भी पशु के समान हो जाते हैं। वह विचार नहीं करता। इसीलिए जब तामसिक वृत्ति आती है, तो उसमें विवेक का सर्वथा अभाव रहता है, विवेक मानो ढक जाता है। यहाँ पर भगवान कृष्ण कहते हैं कि मरने के समय जो वृत्तियाँ उठेंगी, वे सात्त्विक, राजसिक या तामसिक होंगी, यह ईश्वर पर निर्भर नहीं, बल्कि यह व्यक्ति-विशेष पर निर्भर करता है। श्रीरामकृष्ण से किसी ने यह प्रश्न पूछा कि भागवत में लिखा है कि अजामिल ने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा था। जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसने अपने लड़के को 'नारायण' नाम से पुकारा, जिसे सुनकर विष्णु के दूत आ गये और उसे विष्णुलोक में ले गये। भक्तों ने श्रीरामकृष्ण से पूछा, 'महाराज, यह तो बहुत अच्छा है, उस अजामिल ने तो सारे जीवन में पाप ही पाप किए और मृत्यु के समय नारायण पुकारने से ही वह विष्णुलोक को चला गया।' श्रीरामकृष्ण हँसकर कहते हैं कि नारायण

इतने मूर्ख थोड़े ही हैं। इतनी छोटी-सी बात तो हम लोग ही समझ लेते हैं। अरे, वह अपने लड़के को बुला रहा है और नारायण अपने पार्षदों को भेज देते हैं। कथा में भले ही इस प्रकार की बात लिखी हो, पर नारायण इतने मूर्ख तो नहीं हैं कि उसने पुकारा अपने लड़के को और नारायण ने समझ लिया कि मुझे पुकार रहा है। ऐसी बात नहीं है। वह जो उसके भीतर में वृत्ति आई, उसके जीवन का जो संस्कार प्रबल हुआ होगा, उसने ही उसका उद्धार किया होगा। भागवत में हम पढ़ते हैं कि अजामिल के जीवन में बड़ी ग्लानि थी। उसके जीवन का एक पक्ष आया जब वह पतित हुआ और अन्य एक पक्ष आया जब उसके जीवन में उसे ग्लानि हुई, पश्चात्ताप हुआ। फिर वह जानबूझकर अपने छोटे लड़के का नाम नारायण रख देता है, ताकि उसके मुख से नारायण का नाम निकल सके। यह उसकी अन्त:प्रेरणा थी। उसने सोचा कि मैं तो महापापी हूँ, लड़के को नारायण का नाम दूँगा, तो कम-से-कम मेरे पापों का कुछ तो उपशम हो जाएगा। श्रीरामकृष्ण वही कहा करते थे कि जो जीवन भर जैसे कर्म करता है, मरने के समय वही सब स्मरण हो आता है। कोई सोच सकता है कि अभी तो जीवन का आनन्द लूट लिया जाए, जो कुछ अच्छा लगे, वह कर लिया जाए, फिर मरते समय भगवान का नाम ले लिया जाए। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि कब मृत्यु आ जाएगी। हमारी सारी योजना धरी की धरी रह जाती है। मृत्यु जब योजना बनाने दे तब न? यह पहला प्रश्न है। फिर यदि हमें मालूम भी हो जाए कि मृत्यु आ रही है, अब मैं नहीं बचूँगा, इसीलिए मैं मन को भगवान में ले जाऊँ, यह दूसरा प्रश्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे संस्कार होंगे, वैसी ही प्रवृत्तियाँ आएँगी और मृत्यु के समय उसी के अनुसार फल देंगी। प्रभु श्रीकृष्ण उसके बाद कहते हैं –

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।१७।।

सत्त्वात् ज्ञानम् संजायते (सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है) च रजस: एव लोभ: (और रजोगुण से लोभ) च तमस: प्रमादमोहौ (तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं) भवत: अज्ञानम् एव (अज्ञान भी होता है)।

''सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से लोभ तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं तथा अज्ञान भी होता है।''

जब भीतर में सत्त्व प्रबल होता है, तो ज्ञान उत्पन्न होता है। रजोगुण आने से लोभ की प्रवृत्ति आती है। जब तमोगुण का आधिक्य होता है, तो प्रमाद और मोह होता है, अज्ञान की स्थिति चली आती है। उसके बाद बताया –

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा:।।१८।।

सत्त्वस्था: ऊर्ध्वं गच्छन्ति (सात्त्विक पुरुष उच्च लोकों को जाते हैं) राजसा: मध्ये तिष्ठन्ति (राजसिक पुरुष मनुष्य लोक में ही रहते हैं) जघन्यगुणवृत्तिस्था: (तमोगुणी वृत्ति वाले) तामसा: अध: गच्छन्ति (तामसिक लोग अधोगति को प्राप्त होते हैं)।

''सात्त्विक पुरुष उच्च लोकों को जाते हैं, राजसिक पुरुष मनुष्य लोक में ही रहते हैं। तमोगुणी वृत्ति वाले तामसिक लोग अधोगति को प्राप्त होते हैं।''

यहाँ पर प्रभु कह रहे हैं कि जो सत्त्वगुणी प्रवृत्तिवाले होते हैं, वे ऊर्ध्व जाते हैं। अर्थात् ऊपर के लोकों में जाते हैं। जो राजसिक प्रवृत्तिवाले होते हैं, वे मध्य में रहते हैं। अर्थात् वे मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। परन्तु जो जघन्यवृत्तिवाले मनुष्य होते हैं, जो तामसी होते हैं, वे पतित होते हैं और पशु आदि योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं। यहाँ तक तो तीनों गुणों की बात कही गयी। उसके बाद भगवान कृष्ण ज्ञान का एक तत्त्व देते हैं।

नान्यं गुणेभ्य: कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।१९।।

यदा द्रष्टा गुणेभ्य: (जिस समय द्रष्टा इन गुणों के अतिरिक्त) अन्यम् कर्तारम् न अनुपश्यति (दूसरा कर्ता नहीं देखता) च गुणेभ्य: परम वेत्ति (और गुणों से परे मेरे स्वरूप को जान लेता है) स: मद्‌भावम् अधिगच्छति (तो वह मुझे प्राप्त होता है)।

''जिस समय द्रष्टा इन गुणों के अतिरिक्त दूसरा कर्ता नहीं देखता और गुणों से परे मेरे स्वरूप को जान लेता है, तो वह मुझे प्राप्त होता है।''

जिस समय द्रष्टा इन गुणों को छोड़कर दूसरा कर्ता नहीं देखता, उस समय वह गुणों के परे मेरे स्वरूप को जान लेता

है। श्रीकृष्ण ने जिन गुणों की विवेचना की, उन पर साधक चिन्तन करता है कि अमुक गुण बढ़ने से उसका क्या फल होता है आदि। अब रजोगुणों को बढ़ाने के लिए अमुक कर्म करने पड़ेंगे इत्यादि बातों को सोच-सोचकर जिस समय मैं अपने भीतर में अनुभव करता हूँ कि मैं द्रष्टा हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा है। मैं शरीर का द्रष्टा हूँ। मन मेरा है, मैं मन नहीं हूँ। मैं मन का द्रष्टा हूँ। बुद्धि मेरी है, मैं बुद्धि नहीं हूँ। मैं बुद्धि का द्रष्टा हूँ। अहं मेरा है, मैं अहं का नहीं हूँ। शरीर, मन, बुद्धि और अहं ये सब मुझसे अलग हैं। यह जिसे मैं अहं कह रहा हूँ, मेरापन कह रहा हूँ, यह मेरापन क्या है? जब उस द्रष्टा की स्थिति आती है, तो कहा कि ऐसा द्रष्टा जिस समय यह देखता है कि गुणों को छोड़कर और दूसरा कोई कर्ता नहीं है, गुणा गुणेषु वर्तन्ते – गुण ही गुण में बरत रहे हैं, तो यह ज्ञानी की स्थिति है, द्रष्टा की स्थिति है। संसार में बहुत-सी घटनाएँ होती हैं, आपदा-विपदा आती रहती हैं। परन्तु ये जो ज्ञानी है, जो गुणों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसका दृष्टिकोण अलग होता है। एक तो वह होता है, जो शरीर और आत्मा का विवेचन करते हुए ज्ञान प्राप्त करता है। जैसे ऐसा विचार करते हुए कि आत्मा जलती नहीं, गिली नहीं की जा सकती, मरती नहीं, उसका नाश नहीं होता इत्यादि। यह एक स्थिति होती है। पर यहाँ पर गुणों की दृष्टि से वस्तुस्थिति को आँका जाता है। कैसे? जैसे ये तीन गुण हैं। प्रकृति तीन गुणों से बनी हुई है – सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। प्रत्येक गुण के अपने-अपने लक्षण और धर्म हैं। यह जो जीवन चल रहा है, वहाँ गुण ही गुण में बरत रहे हैं। मैं तो द्रष्टा हूँ, साक्षी हूँ, ऐसा भाव जब साधक के भीतर पैदा होता है, तब वह गुणों के भी परे मेरे स्वरूप को जान लेता है और मेरे भाव को प्राप्त हो जाता है। **मद्भावं** अर्थात् वह परमात्म तत्त्व। यहाँ पर श्रीकृष्ण ने अपने लिए 'मैं' कहा है। यह वस्तुत: अपने ब्रह्मतत्त्व के लिए, अपने स्वरूप के वर्णन के लिए वे ऐसा कहते हैं। इसीलिए जहाँ भी 'मैं' आएगा, वहाँ पर उसका अर्थ होगा, ब्रह्म। जहाँ भी वे 'मेरा' कहेंगे, वहाँ पर अर्थ होगा – ईश्वर का। इसी भाव से हमें देखना है। वे कहते हैं – **गुणेभ्यश्च परं वेत्ति** – मानो सब गुणों के परे, ऐसा मुझे तत्त्व से जान लेते हैं और मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। यह गुणों की साधना है। प्रकृति में जितनी कर्मशीलता है, वह गुणों के कारण है। 'मैं' साक्षी हूँ, द्रष्टा हूँ, ऐसा भाव जब आता है कि मैं गुणों से परे हूँ, तो ईश्वर का भाव, श्रीकृष्ण का स्वरूप साधक के भीतर में अवतरित हो जाता है और वह उनके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण कहते हैं –

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।२०।।

देही देहसमुद्भवान् (मनुष्य शरीर की उत्पत्ति के कारण) एतान् त्रीन् गुणान् अतीत्य (इन तीनो गुणों को पार करके) जन्ममृत्युजरादु:खै: (जन्म, मृत्यु, जरा और दुखों से) विमुक्त: अमृतम् अश्नुते (मुक्त होकर अमृत को प्राप्त होता है)।

''मनुष्य शरीर की उत्पत्ति के कारण इन तीनों गुणों को पार करके जन्म, मृत्यु, जरा और दुखों से मुक्त होकर अमृत को प्राप्त होता है।''

तब फल क्या होगा? **देही देहसमुद्भवान्** – देह से उत्पन्न हुए अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न हुए इन तीनों गुणों को पार करके देही क्या करने में समर्थ होता है? वह इस ज्ञान के द्वारा **जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तः** – जन्म, मृत्यु और जरा (बुढ़ापा); इन तीन दुखों से मुक्त हो जाता है। जन्म को भी दुख के रूप में देखा गया और मृत्यु तो दु:खस्वरूप है ही। मनुष्य तो मृत्यु की कल्पना से ही भयभीत होता है। बुढ़ापे का दुख तो सर्वविदित ही है। मानो इन दुखों को सहने की क्षमता उसमें आ जाती है। यही यहाँ पर विमुक्ति का अर्थ है। आज अज्ञान की स्थिति में मैं इसे सह नहीं पाता हूँ, चंचल हो जाता हूँ, कलपता हूँ, रोता हूँ। परन्तु इन गुणों को मैं पार कर जाता हूँ और जान जाता हूँ कि ये गुण अपने आपमें बरतते हैं और मैं इनका साक्षी हूँ, मैं द्रष्टा हूँ। तब इन्हीं गुणों का प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ता है। जन्म, मृत्यु और जरा; ये गुणों के घेरे में ही रहते हैं। पर मैं जब इनसे ऊपर उठने में समर्थ होता हूँ, तब – **अमृतमश्नुते** - इस प्रकार मैं अमृत को प्राप्त होता हूँ।

उदाहरण के रूप में भागवत का एक प्रसंग देखें। उसमें राजा परीक्षित की कथा आती है। महाभारत में भी राजा परीक्षित की कथा है। इनकी भी सातवें दिन तक्षक नामक साँप के डस लिये जाने से मृत्यु होती है। भागवत में वर्णित परीक्षित की भी मृत्यु होती है। पर दोनों परीक्षितों में बहुत

शेष भाग पृष्ठ ४० पर

विवेकानन्द के सपने हो रहे साकार

शिव प्रकाश

कोलकाता के विश्वनाथ दत्त एवं भुवनेश्वरी देवी के सम्भ्रान्त परिवार में १२ जनवरी, १८६३ को एक बालक का जन्म हुआ। भगवान शिव की तपस्या के बाद जन्मे इस बालक को बचपन में नाम मिला नरेन्द्रनाथ दत्त। इस बालक को परिवार के सभी लोग प्रेम से नरेन के नाम से बुलाते थे। संन्यास दीक्षा के बाद नरेन स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो (अमेरिका) में आयोजित कार्यक्रम के ऐतिहासिक भाषण से यह सन्त सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हो गया। स्वामीजी का यह भाषण हिन्दू धर्म की विशेषताओं एवं मान्यताओं को विश्वभर में पुन:प्रतिष्ठित करने में सफल हुआ।

परतन्त्रता के कालखण्ड में स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज में स्वाभिमान जगाने का कार्य किया। उनके इस प्रयास का परिणाम हुआ कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन में सक्रिय सेनानियों की प्रेरणा के केन्द्र स्वामी विवेकानन्द बन गए। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख किया है, ''मैंने स्वामी विवेकानन्द से शक्ति देने के लिये कहा ताकि मैं अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कर सकूँ।'' अस्पृश्यता-निवारण, अशिक्षा को दूर करना, उद्योगों का विकास एवं महिला-उत्थान जैसे अनेक विषयों पर उन्होंने भारत के विकास की नई दृष्टि दी, जो आज भी हमारे लिये प्रेरक मार्गदर्शन है। भोग-विलासिता एवं साम्प्रदायिकता के संघर्ष में फँसे वैश्विक समुदाय को भी उन्होंने विश्व शान्ति का मार्ग दिखाया। स्वामीजी भक्ति के साथ भारत के आधुनिक विकास के अद्‌भुत संगम थे।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के जीवन पर स्वामी विवेकानन्द के विचारों की गहरी छाप दिखाई देती है। अपने विद्यार्थी काल में ही नरेन्द्र मोदी रामकृष्ण मठ, राजकोट से जुड़ गए थे। उस मठ के तत्कालीन प्रमुख स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज से उन्होंने संन्यास-दीक्षा की इच्छा भी व्यक्त की थी। स्वामी आत्मस्थान्द जी ने ही उन्हें समाज के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। यह प्रेरणा ही प्रधानमन्त्री मोदी के लिए गरीब-कल्याण एवं स्वाभिमानी समृद्ध भारत गढ़ने की प्रेरणा बन गई। रामकृष्ण मिशन के साथ उनका सम्बन्ध आज भी जीवन्त बना हुआ है।

स्वामी विवेकानन्द परतन्त्रता की मानसिकता के सम्बन्ध में कहते हैं, ''परतन्त्रता रूपी इस अन्धकार ने भारत के स्वाभिमान को ऐसा ग्रहण लगाया कि भारतवासी अपना आत्मविश्वास खो बैठे।'' आत्महीनता का परिणाम यह हुआ कि हमको हमारे महापुरुष, इतिहास, ज्ञान, कला एवं संस्कृत; सभी में दोष देखने की प्रवृत्ति हो गयी एवं हमने विदेशी अनुकरण को आधुनिकता का पर्याय मान लिया गया। प्रधानमन्त्री मोदी ने अपने भाषण में १५ अगस्त, २०२३ को स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर भारत को विकसित भारत बनाने का संकल्प दोहराया। अमृतकाल की इस बेला में उन्होंने प्रत्येक भारतीय को पंचप्रण का पालन करने का आग्रह किया। इसमें भारतीय समाज को सभी प्रकार की परतन्त्रता छोड़ने का भी प्रण था। २२ जनवरी, २०२४ को श्रीराम मन्दिर में भगवान रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा इसी स्वाभिमान को जगाने के अनेक प्रयासों में से एक है।

स्वामी विवेकानन्द शिक्षा द्वारा मनुष्य की लौकिक एवं पारलौकिक; दोनों प्रकार की उन्नति चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि पाठ्यक्रम में आधुनिक विषयों के साथ-साथ स्वास्थ्य, राष्ट-सेवा जैसे विषय सम्मिलित हों। नई शिक्षा नीति के माध्यम से सभी नागरिकों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा, भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा एवं भारत को वैश्विक ज्ञानमहाशक्ति बनाने का संकल्प स्वामीजी के विचारों का

शिक्षा में प्रकट रूप है।

स्वामी विवेकानन्द जी गरीबों की पीड़ा को देखकर बहुत व्यथित थे। अमेरिका के वैभव से भारत की गरीबी की तुलना करते हुए वे रात भर रोते रहे। इसी पीड़ा को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि अब हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए – 'दरिद्रदेवो भव'। स्वामीजी ने भारत की उन्नति का घोषणा पत्र ही जैसे लिखा हो, उन्होंने कहा, नया भारत निकल पड़े, गरीबों की झोपड़ी से, मल्लाह की नौकाओं से, लोहार की भट्टियों से, किसानों के खेत-खलिहानों से, मोचियों की झोपड़ी से, गिरिकन्दराओं से, यह देश तो वहीं बसता है। प्रधानमन्त्री मोदी ने इस घोषणा पत्र को साकार रूप देना प्रारम्भ किया। उन्होंने समाज के अलग-अलग वर्ग के गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की।

स्वच्छता अभियान, उज्ज्वला योजना, प्रत्येक गाँव को विद्युत-आपूर्ति के लिए उजाला योजना, आयुष्मान भारत, जल जीवन मिशन आदि अनेक योजनाएँ गरीब-उत्थान के लिए मील का पत्थर साबित हुईं। ४ करोड़ से अधिक परिवार को आवास देना, १ करोड़ ३६ लाख युवाओं के लिए कौशल विकास विभाग रोजगार उपलब्धि का माध्यम बना। ८० करोड़ लोगों को प्रतिमाह अन्न पहुँचाना, गरीब की रोटी की समस्या का समाधान है। गरीब की रोटी के विषय पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, गरीब को पहले रोटी दो, तब गीता सुनाओ, क्योंकि उसकी पहली आवश्यकता रोटी है।

समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले हमारे छोटे-छोटे शिल्पकार हैं, जिन्हें प्रधानमन्त्री ने भारत का निर्माण करनेवाले विश्वकर्मा कहा है। इनमें बढ़ई, लोहार, सुनार, सुतार, कुम्हार, मूर्तिकार, मोची, धोबी, आदि श्रेणी के लोग आते हैं। ऐसे वर्ग के लिए प्रधानमन्त्री विश्वकर्मा योजना के माध्यम से ३० लाख परिवारों को लगभग १.५ करोड़ लोगों को सहायता मिलेगी। देश में ठेला लगाकर एवं रेहड़ी-पट्टी के माध्यम से बेचने वाले वेंडर जैसे लघु उद्योगों के माध्यम से जीवन-यापन करनेवाले लोगों को प्रधानमन्त्री स्वनिधि योजना के माध्यम से सहायता उपलब्ध कराकर उनके घर में रोशनी पहुँचाने का कार्य किया है। शिकागो धर्मसभा के अवसर पर स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषण में शिवमहिम्नस्तोत्र से एक श्लोक उद्धृत करते हुए कहा था –

रुचीनां वैचित्र्याादृजुकुटिल नानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

समस्त धर्मों में एक ही परमात्मा का दर्शन एवं सबका लक्ष्य एक ही गन्तव्य है, यह भाव उन्होंने व्यक्त किया था। सम्पूर्ण विश्व में योग की प्रतिष्ठा, कोरोना में 'जान भी जहान भी' के आधार पर विश्व को सहायता, जी-२० में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श वाक्य यह स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रस्तुत विचारों का प्रकटीकरण है।

स्वामी विवेकानन्द जी का यह आह्वान 'उठो जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक मत रुको' को मोदी ने अपने जीवन का आदर्श मान लिया है। बिना रूके, बिना थके, यह कर्मयोद्धा उत्तिष्ठत भारत के लक्ष्य की प्राप्ति में लगा है। हम सभी भारतवासी स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रेरणा लेकर अमृतकाल में भारत को समृद्ध, सुरक्षित, गौरवयुक्त, स्वाभिमानी भारत बनाकर विश्व का तमस हटाने का संकल्प लें। राष्ट्रीय युवा दिवस पर स्वामी विवेकानन्द के प्रति यही श्रद्धांजलि होगी। ○○○

(हरिभूमि, जनवरी, २०२५ से साभार)

पृष्ठ २८ का शेष भाग

राम कैसे हो सकता है! नर्मदा अजेय हैं। जैसे परम दुष्टात्मा भी राम के प्रताप से विषमता खो बैठते हैं, वैसे ही नर्मदा माहात्म्य शिवाशीष की वह अटूट शृंखला है, जिसमें भेदभाव रहित हो सभी नरमुण्ड निबद्ध हैं। क्या राम कथा शबरी, विश्वामित्र, केवट, वशिष्ठ एवं परशुराम के बिना पूर्ण है? क्या नर्मदा-चरित इसके ज्ञात-अज्ञात, साक्षर-निरक्षर, स्नानी-अस्नानी, सुलभ-दुर्लभ, सबल-दुर्बल एवं चैतन्य, अप्रकट भक्तों के बिना पूर्ण है। मूक-सृष्टि एवं मुखर-सृष्टि का अनूठा मेल यहीं मिलेगा, नर्मदा किनारे, स्नान कर जलांजलि प्रदान करते, पूजन करते, ध्यान करते, जाप करते भक्तों में। ये जानते हैं, 'प्रेम ते प्रगट होंहि मैं जाना' का अर्थ, जीवात्मा के परमात्मा में मिलन की सार्थकता तथा गुरु-सेवा द्वारा ज्ञानामृत-प्राप्ति कर लक्ष्योन्मुख गतिशील हो जाना और यह सहज प्राप्त है वहाँ, जहाँ हैं धवल वैशिष्ट्य की धवल नर्मदा। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (८४)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

ठाकुर के सम्बन्ध में रामलाल दादा की स्मृतियाँ

रविवार १३ जुलाई, १९२४

''कल रामलाल दादा (श्रीरामकृष्ण के भतीजे) उद्बोधन में आये तथा उन्होंने वहीं पर प्रसाद ग्रहण किया। उन्होंने कहा, ''जब ठाकुर की माँ (श्रीमती चन्द्रामणि देवी) की मृत्यु हुई, तब सूर्यास्त होने ही वाला था। ठाकुर ने मुझे कुछ सफेद पुष्प लाने के लिए कहा। मैं शिव मन्दिर से कुछ सफेद करबी (धतूरा) पुष्प ले आया। बकूलतला घाट पर ठाकुर अपनी माँ के चरण पकड़कर बहुत व्याकुल होकर रोने लगे तथा कहा ''इसी शरीर ने मेरे इस शरीर को जन्म दिया है।'' रामलाल दादा ने कहा, उनका अन्तिम संस्कार चन्दन की लकड़ी से किया गया।

''एक दिन ठाकुर बेलघर के बड़ा रास्ता (बैरेकपुर ट्रंक रोड) पर घूमने गये। हाइवे को देखते हुए उन्होंने कहा, 'देख, यह हाइवे साधु के मन जैसा सीधा, सरल तथा विस्तृत है।' उन्होंने मुझे एक पेड़ से एक डाली तोड़ लाने के लिए कहा तथा उस दातून से अपना दाँत साफ किया। श्रीरामकृष्ण जहाँ पर खड़े थे, वहाँ से दक्षिणेश्वर काली मन्दिर का कलश साफ-साफ दिखाई दे रहा था तथा काली मन्दिर का चूड़ा काँटा जैसा मालूम हो रहा था। उन्होंने मुझसे कहा, देख, माँ आनन्दमयी को हृदय में धारण करने के कारण मन्दिर को रोमांच हुआ है। सभी अष्ट सात्त्विक गुण प्रकट हो रहा है।

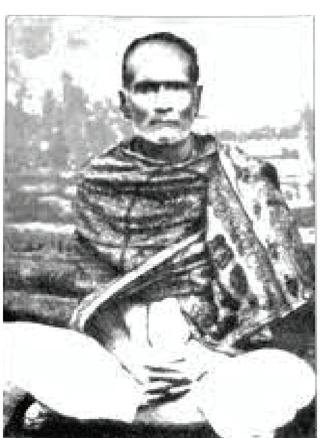

Ramlal Chattopadhyay, Sri Ramakrishna's nephew

''उसके बाद ठाकुर श्रीमाँ सारदा देवी के अस्थायी घर में गये, जो मन्दिर-प्रांगण के बाहर में अवस्थित था। उन्होंने श्रीमाँ से कहा, 'मैं आया हूँ तथा रामलाल भी आया है। हमलोगों को कुछ खाने को दो। तुम्हारे पास खाने को क्या है? श्रीमाँ ने मूड़ी को उड़द दाल तथा तेल और नमक के साथ मिलाकर खाने को दिया। ठाकुर ने दीवार के पास लगी हुई मिर्ची के पौधों से कुछ मिर्ची तोड़कर लाने को कहा। तत्पश्चात् ठाकुर ने श्रीमाँ से कहा, ''यदि तुमको बाजार से कुछ सब्जी चाहिए, तो बताना। रामलाल तो प्रत्येक दिन ही सुबह, दोपहर और शाम को मन्दिर में आता है।'' उसी समय हृदय की पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया। वह श्रीमाँ के साथ रहती थी।

काशी में महापुरुष महाराज के प्रसंग में

''काशी में महापुरुष महाराज ने ध्यान के सम्बन्ध में कहा, 'ध्यान-जप सबके लिए समान रूप से नहीं हो सकता। ईश्वर के प्रति जिसको जो भाव आकर्षित करता है, उसे वही पालन करना चाहिए। ईश्वर के साथ एक विशेष सम्बन्ध रखना चाहिए। दास-भाव कुछ दिन चला और उसके बाद मातृभाव आ गया। ठाकुर तथा रामप्रसाद इत्यादि ने एक भाव में सिद्धि के लिए कठोर साधना की तथा सिद्ध अवस्था प्राप्त की थी। एक सामान्य मनुष्य के लिए उस आध्यात्मिक भाव में अनवरत इक्कीस दिन से अधिक समय तक रहना सम्भव नहीं है। शरीर उस भाव को सहन नहीं कर सकता। ईश्वर अनन्त भावमय हैं। उनमें से एक भाव का ही उचित प्रकार से पालन करना प्रर्याप्त है। ईश्वर-आदेश-प्राप्त आचार्यगण ही एक के बाद एक विभिन्न भाव का अवलम्बन करके ईश्वर को प्राप्त करते हैं। मन चंचल है, इसके लिए अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता है। अभ्यास का अर्थ है ध्यान एवं किसी विषय, दिव्य व्यक्तित्व या जो आदर्श तुम्हें आकर्षित करता है, उस भाव का बार-बार चिन्तन। वैराग्य केवल स्थूल होने से नहीं होगा। वैराग्य का वास्तविक अर्थ अन्य समस्त विषयों को छोड़कर केवल आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करना। इससे साधक सबमें चैतन्य दर्शन करने की ओर

अग्रसर होता है, यहाँ तक कि तुच्छातितुच्छ विषयों में भी। जैसा कि ठाकुर कहा करते थे, ''साधक के लिए तब सब कुछ चिन्मय हो जाता है, चिन्मय श्याम, चिन्मय नाम तथा चिन्मय धाम।''

''इष्ट का अविच्छिन्न तैलधारावत् चिन्तन ही ध्यान है। कभी-कभी ध्यान करना अच्छा नहीं लगता। उस समय सद्‌ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। वह भी अच्छा नहीं लगने पर सत्संग तथा साधु-महात्माओं के जीवन के विषय में चर्चा करनी चाहिए। किसी को यदि यह भी अच्छा नहीं लगता है, तो भक्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए साधक को किसी सन्त के साथ रहना चाहिए, उनकी सेवा-परिचर्या करनी चाहिए तथा उनके दिशा-निर्देश में रहना चाहिए। ध्यान के विभिन्न प्रकार हैं। जप करने से भी ध्यान होता है। जप करते-करते माला रुक जाती है, तब ध्यान करने का मन होता है तथा आनन्द का अनुभव होता है।

''कोई-कोई साधक गीता, उपनिषदों या स्तोत्रों के विषय को लेकर ध्यान करते हैं तथा उनके बारें में नया-नया ज्ञान प्राप्त करते हैं।

''जप-ध्यान करने से क्या होता है? प्राणवायु हल्की हो जाती है, मन की शुष्कता दूर होती है तथा हृदय में भक्ति की वृद्धि होती है। प्रेम तथा भक्ति ही सार-वस्तु है। भक्ति ही साधक को अन्तर्महल में ले जाती है।

''साधु-सन्त की क्या पहचान होती है? श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है, 'जिसके संग से चित्त में भगवत्-वृत्ति स्वाभाविक रूप से उठती है, उसको सच्चा साधु-सन्त जानना चाहिए।

''कभी-कभी हम ऐसा सोचते हैं कि हम जो कार्य कर रहे हैं, वह ठाकुर का कार्य नहीं है। हम अपना निरर्थक ही समय नष्ट कर रहे हैं। जप-ध्यान, पूजा तथा स्वाध्याय करना इससे कहीं अच्छा होता। इससे कार्य तो पूर्ण हो गया, लेकिन उचित मन:स्थिति के अभाव में चित्त की शुद्धि नहीं हुई। इसीलिए हमें ऐसा सोचना चाहिए ''यह ठाकुर का कार्य है। वे देख रहे हैं। दक्षता तथा उत्कृष्टतापूर्वक कार्य करने से उनको आनन्द होगा। यदि कोई इस प्रकार की भावना रखते हुए सभी कार्य करता है, तो जूता-सिलाई से लेकर चण्डीपाठ; सब समान हो जाता है। इस प्रकार कर्म करने से मन में सहज-स्वाभाविक ही भगवान के विचार उठने लगेंगे। दरिद्र में नारायण, गरीब में नारायण देखने से पहले साधक को अपने गुरु तथा अन्य सन्त-महात्माओं में नारायण देखना चाहिए। इसके बिना, सभी के भीतर नारायण देखना सम्भव नहीं होगा।

''प्रश्न – महाराज, हमलोगों को भक्ति क्यों नहीं होती?

''महापुरुष महाराज – 'उनकी दया, उनकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं होता। रोते हुए श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करो। वे हृदय-ग्रन्थि खोल देंगे। ''भिद्यते हृदय-ग्रन्थि: अर्थात जब उनका दर्शन होता है, तो हृदय-ग्रन्थि खुल जाती है।'' क्या यह महान सौभाग्य, महान आश्वासन की बात नहीं है कि वे (श्रीरामकृष्ण) अवतरित हुए हैं और उन्होंने हमारा भार स्वीकार किया है? क्या अवतार जब-तब आते हैं? ऐसे सौभाग्यशाली कितने लोग हैं, जिन्होंने उनका दर्शन किया तथा उनकी लीला को समझ पाये? समाधि होने से भी यह आवश्यक नहीं कि ब्रह्मज्ञान हो जाये। समाधि में रखना या नहीं रखना; सभी उनकी इच्छा है। ब्रह्म और माया-शक्ति एक तथा अभेद है, जैसे चलता हुआ साँप तथा स्थिर साँप।

(क्रमशः)

पृष्ठ ३६ का शेष भाग

अन्तर है। महाभारत के परीक्षित को ऋषिकुमार जब शाप देता है, जिसके फलस्वरूप सातवें दिन उनकी मृत्यु अनिवार्य थी, तो वहाँ पर संकेत मिलता है। राजा परीक्षित ने ऐसा महल बनवाया, जिसके भीतर एक छोटा-सा कीड़ा तक भी प्रवेश न कर सके। फिर तो साँप की बात अलग है। वहाँ इस प्रकार की व्यवस्था करने के बावजूद तक्षक किसी-न-किसी प्रकार वहाँ घुसने में समर्थ हो गया और परीक्षित को डस लेता है। सातों दिन महाभारत के परीक्षित मृत्यु-भय से काँप रहे हैं। पर जो भागवत के परीक्षित हैं, वे तो सातों दिन खुले में बैठकर भगवान शुकदेव के श्रीमुख से भागवत सुनते हैं और सुनकर उन्होंने मृत्यु को जीत लिया। उन्हें मृत्युभय ने त्रास नहीं दिया। अपने को तक्षक से बचाने की चेष्टा नहीं की। वे तो मानो मृत्यु का आलिंगन करते हैं। मृत्यु के लिए ही तैयार होकर बैठे हैं। मानसिकता में कितना अन्तर आ गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत के परीक्षित ने ज्ञान के द्वारा मृत्यु के दुख को जीत लिया। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द

- पंकज राय

स्वामी विवेकानन्द एक देशभक्त संन्यासी, दार्शनिक, ओजस्वी वक्ता, लेखक, एवं महान चिंतक थे। उन्होंने अमेरिका के शिकागो शहर में सन् १८९३ में आयोजित विश्व धर्म महासभा में भारत की ओर से सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। वे रामकृष्ण परमहंस के सबसे प्रिय शिष्य थे। उन्होंने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसकी सैकड़ों शाखाएँ आज पूरे विश्व में मानव-कल्याण के कार्य में संलग्न हैं।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी १८६३ को कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकील थे तथा उनकी माँ भुवनेश्वरी देवी एक धार्मिक विचारों वाली महिला थीं।

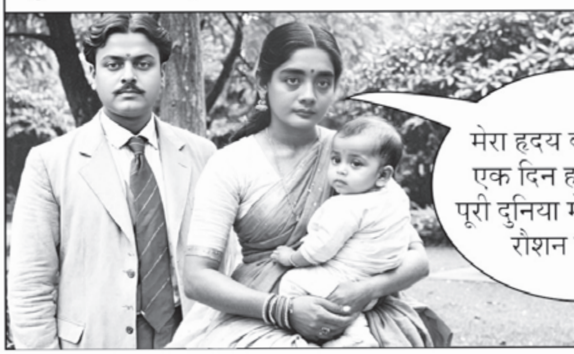

स्वामी विवेकानन्द का वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था पर सब प्यार से उन्हें नरेन कहकर बुलाते थे। नरेन बचपन से ही ईश्वर के प्रति बहुत जिज्ञासु थे।

सन् १८७१ में नरेन्द्रनाथ की प्रारंभिक शिक्षा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के मेट्रोपॉलिटन इंस्टीट्यूशन से हुई। वे कुशाग्रबुद्धि वाले छात्र थे एवं उनकी स्मरण शक्ति अद्वितीय थी।

उन्होंने दर्शन शास्त्र, धर्म, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, कला और साहित्य जैसे विषयों का गहराई से अध्ययन किया। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षित नरेन्द्रनाथ बहुत सुरीले कंठ में भजन भी गाते थे।

रामकृष्ण परमहंस रानी रासमणि द्वारा बनवाये दक्षिणेश्वर स्थित काली मंदिर के पुरोहित थे। वे सभी धर्मों में आस्था रखते थे और माँ काली को साक्षात देखने की बातें भी किया करते थे।

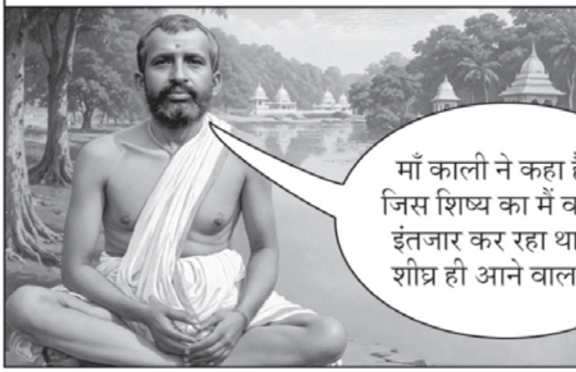

सन् १८८१ में युवा नरेन पुरोहित रामकृष्ण परमहंस से मिलकर मंत्रमुग्ध हो गए। उनका अधिकांश समय अब दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में ही बीतने लगा।

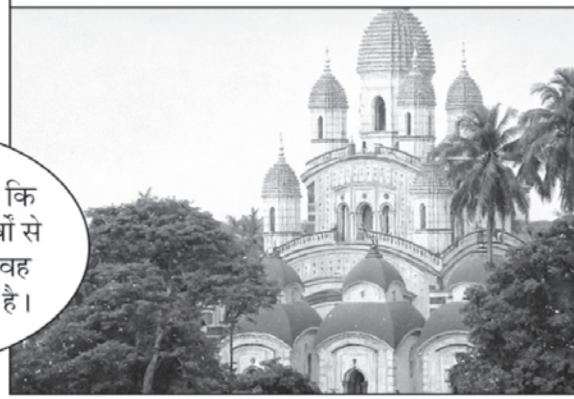

रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में रह कर नरेन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार के सभी धर्म सच्चे हैं और ईश्वर तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न साधन मात्र हैं।

१६ अगस्त १८८६ को रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् नरेन ने पूरी तरह से संन्यास धर्म को अपना लिया। अब वे स्वामी विविदिषानन्द कहलाने लगे।

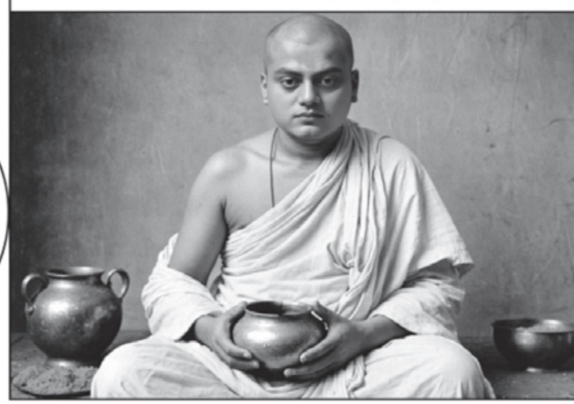

सन् १८८८ में उन्होंने मठ छोड़ कर अगले पाँच वर्ष तक भारत में बड़े पैमाने पर यात्राएँ की एवं भारत की सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को करीब से अनुभव किया।

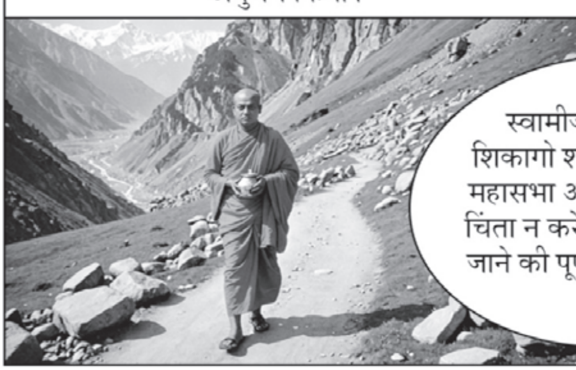

खेतड़ी के महाराजा अजित सिंह स्वामीजी के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनके अनुरोध पर स्वामीजी ने अपना नाम स्वामी विविदिषानन्द से बदलकर स्वामी विवेकानन्द रख लिया।

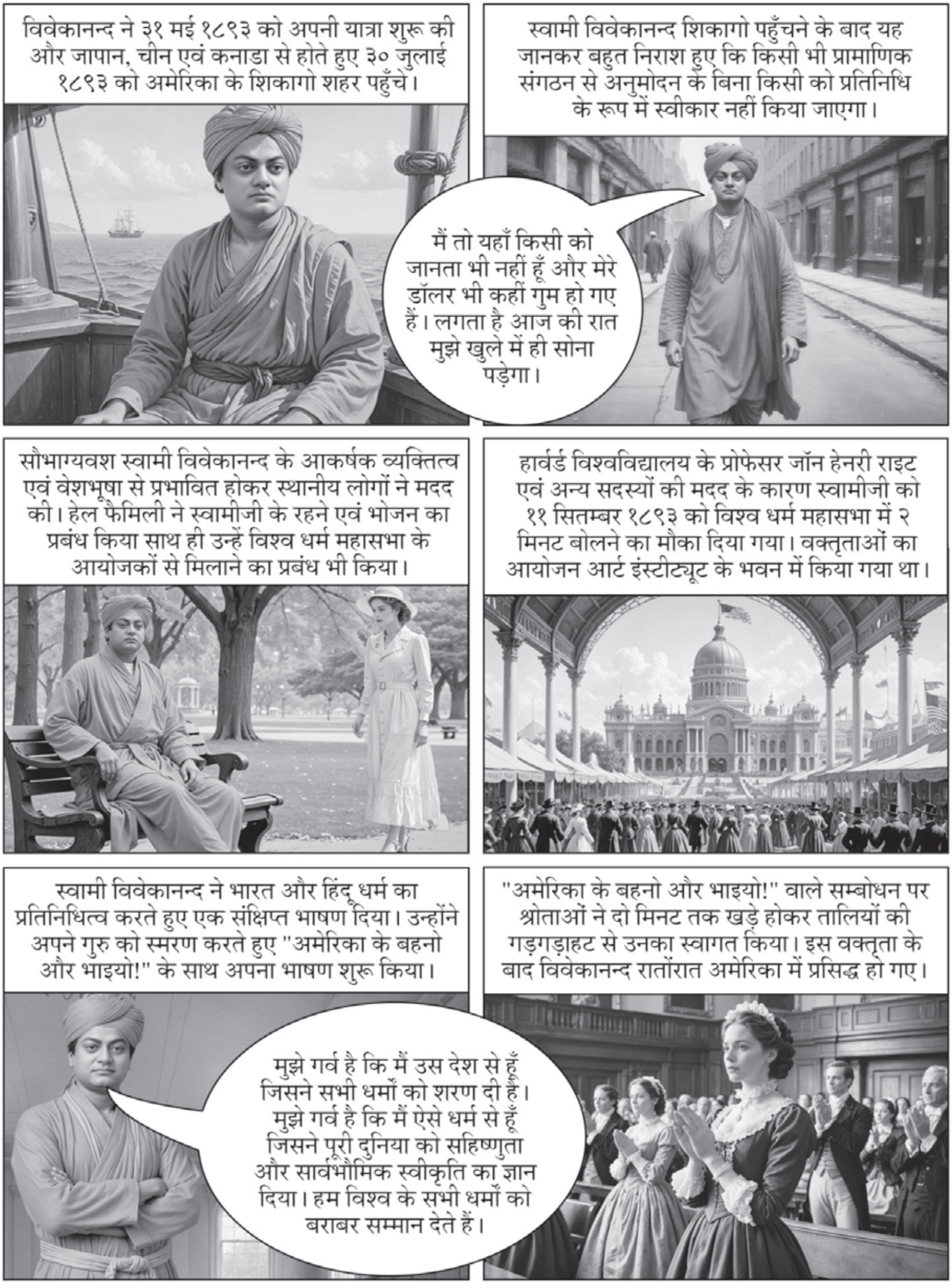
विवेकानन्द ने ३१ मई १८९३ को अपनी यात्रा शुरू की और जापान, चीन एवं कनाडा से होते हुए ३० जुलाई १८९३ को अमेरिका के शिकागो शहर पहुँचे।
स्वामी विवेकानन्द शिकागो पहुँचने के बाद यह जानकर बहुत निराश हुए कि किसी भी प्रामाणिक संगठन से अनुमोदन के बिना किसी को प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा।
मैं तो यहाँ किसी को जानता भी नहीं हूँ और मेरे डॉलर भी कहीं गुम हो गए हैं। लगता है आज की रात मुझे खुले में ही सोना पड़ेगा।
सौभाग्यवश स्वामी विवेकानन्द के आकर्षक व्यक्तित्व एवं वेशभूषा से प्रभावित होकर स्थानीय लोगों ने मदद की। हेल फैमिली ने स्वामीजी के रहने एवं भोजन का प्रबंध किया साथ ही उन्हें विश्व धर्म महासभा के आयोजकों से मिलाने का प्रबंध भी किया।
हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन हेनरी राइट एवं अन्य सदस्यों की मदद के कारण स्वामीजी को ११ सितम्बर १८९३ को विश्व धर्म महासभा में २ मिनट बोलने का मौका दिया गया। वक्तृताओं का आयोजन आर्ट इंस्टीट्यूट के भवन में किया गया था।
स्वामी विवेकानन्द ने भारत और हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए एक संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने अपने गुरु को स्मरण करते हुए "अमेरिका के बहनो और भाइयो!" के साथ अपना भाषण शुरू किया।
मुझे गर्व है कि मैं उस देश से हूँ जिसने सभी धर्मों को शरण दी है। मुझे गर्व है कि मैं ऐसे धर्म से हूँ जिसने पूरी दुनिया को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का ज्ञान दिया। हम विश्व के सभी धर्मों को बराबर सम्मान देते हैं।
"अमेरिका के बहनो और भाइयो!" वाले सम्बोधन पर श्रोताओं ने दो मिनट तक खड़े होकर तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया। इस वक्तृता के बाद विवेकानन्द रातोंरात अमेरिका में प्रसिद्ध हो गए।

स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के साथ-साथ अन्य यूरोपीय देशों की भी यात्रायें की और अपनी वक्तृताएं दी। उन्होंने इन देशों में वेदान्त केन्द्रों की स्थापना की। सन् १८९५ में उनकी मुलाकात मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल से हुई जो कि एक आयरिश महिला थीं और बाद में स्वामी विवेकानन्द की प्रिय शिष्या सिस्टर निवेदिता बनीं।
१५ जनवरी १८९७ को स्वामी विवेकानन्द यूरोप से वापस कोलंबो पहुँचे। वहाँ से मद्रास होते हुए कलकत्ता लौट आये। रास्ते में हर जगह उनका देशवासियों द्वारा भव्य स्वागत किया गया।
हम देशवासियों को अपनी कमजोरियों को दूर करना होगा। हमें अपनी संस्कृति पर गर्व करने के साथ-साथ पश्चिम की वैज्ञानिक सोच को भी अपनाना होगा।
स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९७ में हुगली नदी के तट पर बेलूड़ मठ की स्थापना की। यह रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ का मुख्यालय है।
सन् १८९८ एवं १८९९ में कलकत्ता के कई इलाकों में प्लेग रोग फैल गया। स्वामीजी ने अपनी पूरी शक्ति प्लेग रोगियों की मदद करने में झोंक दी।
प्लेग रोग पीड़ितों के लिए बेलूड़ मठ के दरवाजे हमेशा खुले हुए हैं। जरूरत पड़ी तो मैं मठ की जमीन भी बेचकर प्लेग रोगियों की मदद करूँगा।
कार्य के बोझ से स्वामी विवेकानन्द का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। ४ जुलाई १९०२ को ध्यान करते हुए रात ९:२० बजे उन्होंने महासमाधि प्राप्त कर मृत्यु को वरण कर लिया।
इस धरती पर मेरा समय पूरा हो गया है। अब आगे का कार्य मठ के गुरु भाई संभालेंगे।
स्वामी विवेकानन्द ने देशवासियों के मन में देश के प्रति गौरव का बोध करवाया। स्वामीजी की प्रेरणा का परिणाम था कि भारत में स्वतंत्रता सेनानियों की फौज खड़ी हो गई और आखिरकार अंग्रेजों से भारत स्वतंत्र हुआ। उनके जन्मदिन १२ जनवरी को देश में राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

समाचार और सूचनाएँ

परम पूज्य उपाध्यक्ष महाराज का छत्तीसगढ़ प्रवास

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत स्वामी सुहितानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ प्रवास हुआ। महाराजजी २२ अक्तूबर, २०२५ को सन्ध्या ६.१५ बजे कोलकाता से रायपुर पहुँचे और उस दिन उन्होंने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में निवास किया। २३ अक्तूबर को महाराजजी प्रात: ८.३० बजे रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के लिये प्रस्थान किये। वहाँ उन्होंने भक्तों को दीक्षा प्रदान की। वहाँ से महाराज जी अम्बिकापुर गये। वहाँ उन्होंने भक्तों को दीक्षा प्रदान की। ३० अक्तूबर, २०२५ को प्रात: १० बजे महाराज जी बिलासपुर से पुन: विवेकानन्द आश्रम, रायपुर पहुँचे। ३१ अक्टूबर को महाराज ने भक्तों को दीक्षा प्रदान की। १ नवम्बर को प्रात: ८.१५ बजे महाराजजी वल्लभाचार्य जी की जन्मस्थली चम्पारण दर्शनार्थ गये। वहाँ गोपाल धर्मशाला में कुछ देर रुककर दर्शन हेतु मन्दिर गये। वहाँ से भव्य दर्शन कर वे १२.३० बजे आश्रम आये। सन्ध्या ७ बजे आश्रम के विवेकानन्द सत्संग भवन में महाराज जी के आशीर्वचन हुए। उन्होंने अपने व्याख्यान में उपस्थित भक्तों को रामकृष्ण मिशन की सेवा की ऐतिहासिक परम्परा और विश्वव्यापी सेवा के सम्बन्ध में भक्तों को अवगत कराया। उसके बाद महाराजजी का प्रणाम हुआ। २ नवम्बर को महाराज ने रायपुर में विवेकानन्द सरोवर, स्वामी विवेकानन्द का निवास स्थल 'डे-भवन' और विवेकानन्द विद्यापीठ का भ्रमण किया। महाराजजी आज ही कोलकाता हेतु आश्रम से ३ बजे विवेकानन्द हवाईअड्डा के लिये प्रस्थान किये। महाराज के आगमन से सबमें प्रसन्नता और नई ऊर्जा का संचार हुआ।

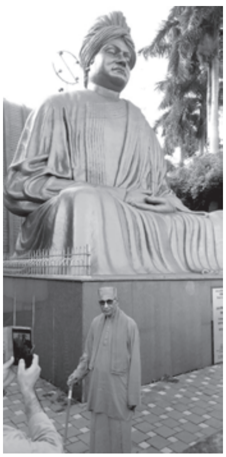

कानपुर में शताब्दी-वर्ष कार्यक्रम का आयोजन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर में आश्रम के शताब्दी-वर्ष कार्यक्रम में युवा-संगोष्ठियाँ, विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। उसी क्रम में २७ अक्तूबर, २०२५ को एक कार्यक्रम आयोजित हुआ, जिसमें मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश विधान सभाध्यक्ष श्री सतीश महाना जी थे। उन्होंने रामकृष्ण मिशन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कानपुर में नवनिर्मित भाग्यमण्डपम् का उद्घाटन किया और सभा को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी ने आश्रम की गतिविधियों से अवगत कराया।

रामकृष्ण मिशन, राँची में मन्दिर-निर्माण प्रारम्भ

रामकृष्ण मिशन, आश्रम मोराबाद, राँची में २ नवम्बर, २०२५ को देवोत्थान एकादशी तथा स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज की जयन्ती के शुभ संयोग पर वेद-मन्त्रोच्चारण, गीता-पाठ, चंडी-पाठ, विष्णुसहस्रनाम, श्रीमाँ-नाम संकीर्तन और हनुमान चालीसा के आध्यात्मिक वातावरण में अभिनव श्रीरामकृष्ण देव के सार्वजनीन मन्दिर का विधिवत निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ। इसमें आसपास के कई आश्रमों के ३० संन्यासी और लगभग ४०० भक्त उपस्थित थे।

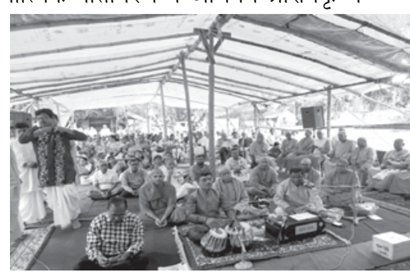

रायपुर आश्रम द्वारा शिक्षण सामग्री वितरण

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा द्वितीय चरण में १ सितम्बर, २०२५ को गरियाबन्द जिले के मैनपुर ब्लाक के जंगलों में १४ विद्यालयों में शिक्षण सामग्री वितरित की गई, जिसमें बच्चों को १ स्कूल बैग, ४ कॉपी, १ पेन, १ पेन्सील, १ पेन्सील कटर, १ रबर और १ स्केल प्रदान किया गया। इसके सर्वे और वितरण में शा.कचना धुर्वा कॉलेज के प्रो. डॉ. विनीत साहू, डॉ. सत्यम् कुम्भकार, डॉ. कपिल चन्द्रा, शीतल ध्रुव, रोहन बंजारे, योगेन्द्र ठाकुर और गौरव ध्रुव ने सहायता की।